रूसी कहानी

मिखाइल प्रीश्वीन

सूरज का ख़ज़ाना

सूरज का ख़ज़ाना (रूसी कहानी) : मिख़ाईल प्रीश्विन

सूरज का ख़ज़ाना (रूसी कहानी) : मिख़ाईल प्रीश्विन

The Treasure Trove of the Sun (Russian Story in Hindi) : Mikhail Prishvin

1

एक बार पेरेस्लाव्ल-जलेस्स्की नगर के बाहर, 'ब्लूदोवो दलदल'1 के निकटवर्ती एक गाँव में दो बच्चे यतीम हो गये। उनकी माँ किसी बीमारी से चल बसी और पिता ने महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में वीरगति पायी।

1. 'ब्लूदोवो दलदल' - एक काल्पनिक नाम, जिसका अभिप्राय ऐसी दलदल से है, जहाँ लोग मार्ग भूल जाते हैं। - सं

हम इसी गाँव में, इनके घर से केवल दो घर दूर रहते थे और हमने तथा अन्य पड़ोसियों ने इनकी यथासम्भव सहायता की। दोनों बच्चे बहुत प्यारे थे। नास्त्या लम्बी टाँगों वाली और सुनहरे

रंग की मुर्गी के समान थी। उसके बाल न तो काले ओर न भूरे ही थे। उनमें सुनहरेपन का हल्का-सा पुट था। उसके सारे चेहरे पर सुनहरे सिक्कों जैसी बड़ी-बड़ी झाँइयाँ थीं। ये झाँइयाँ इतनी घनीभूत होकर फैली थीं कि इनके लिए बड़ी कठिनाई से ही कोई रिक्त स्थान दिखायी देता था। वे सभी दिशाओं में फैली हुई थीं। यदि कोई जगह इनसे खाली थी, तो वह जरा ऊपर को उठी हुई उसकी छोटी-सी नाक ही थी।

मीत्या अपनी बहन से दो वर्ष छोटा था। उसकी आयु दस से कुछ अधिक रही होगी। वह नाटा और गठे बदन, बड़े माथे और चौड़ी गुद्दी वाला मज़बूत तथा जिद्दी लड़का था।

स्कूल के अध्यापक मुस्कुराते हुए उसे आपस में 'नन्हा किसान' कहते थे।

नास्त्या की भाँति उसका चेहरा भी सुनहरी झाँइयों से भरा हुआ था और बहन की तरह ऊपर को उठी हुई छोटी-सी नाक ही इनसे मुक्त थी।

माँ-बाप की मृत्यु के बाद किसान का घर-बार इन बच्चों की सम्पत्ति बन गया। एक बड़ा-सा घर, जोर्का नाम की गाय, दोच्का नाम की बछिया, देरेजा बकरी, कुछ बेनाम भेड़ें और मुर्गियाँ, पेत्या नाम का सुनहरा मुर्गा और ख्रेन नामक सुअर का बच्चा, बस यही कुछ थी इनकी दौलत।

इस सम्पत्ति के साथ इन बेचारे बालकों को जानवरों से सम्बन्धित अनेक चिन्ताएँ भी उत्तराधिकार में मिलीं। किन्तु हमारे

बच्चों को महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के कठिन दिनों में इनसे भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। शुरू में कुछ रिश्तेदारों और हम पड़ोसियों ने इनकी सहायता की। किन्तु शीघ्र ही इन बच्चों ने, जिनमें बड़ा प्यार था और जो काफ़ी समझदार भी थे, हर काम को स्वयं ही करना सीख लिया और बड़े मजे से रहने लगे।

ओह, कैसे समझदार बच्चे थे ये! जब कभी सम्भव होता, ये गाँव के सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेते। चरागाहों, सामूहिक फार्मों, पशुशालाओं में, सभाओं और टैंक-विरोधी खन्दकों, आदि में छोटी-छोटी नाकोंवाले ये चेहरे दिखायी देते। ऐसे उत्साही थे ये दोनों।

यद्यपि हम गाँव के नवागन्तुक थे, तथापि गाँव के प्रत्येक घर के जीवन से परिचित थे। और यह कहना सही होगा कि गाँव में एक भी ऐसा घर नहीं था, जिसके सदस्य ऐसे मिल-जुलकर रहते तथा काम करते हों, जैसे हमारे ये स्नेहपात्र।

अपनी दिवंगत माँ की भाँति नास्त्या चरवाहे की श्रृंगी की आवाज़ सुनकर सूरज निकलने तथा पौ फटने के पहले ही उठ बैठती। वह लम्बी-सी सूखी टहनी हाथ में लिये अपने प्यारे जानवरों को हाँकती हुई बाहर ले जाती और जल्दी-जल्दी घर लौट आती। वह फिर से बिस्तर पर न जाकर चूल्हा गर्माती, आलू छीलती, खाना पकाती और सन्ध्या तक घर की देखभाल करती।

मीत्या के पिता ने उसे लकड़ी के कठौते, पीपे और टब बनाने

सिखाये थे। उसके पास बढ़ई का रंदा और पीपे बनाने वालों का एक ऐसा औजार भी था जो लम्बाई में उससे दुगुना था। इस औज़ार की सहायता से वह तख़्तों को जोड़कर उनके गिर्द लोहे या लकड़ी के घेरे डाल देता था।

चूँकि उनके पास एक गाय थी, इसलिए बच्चों को लकड़ी के बर्तन बनाकर बाज़ार में बेचने की विशेष आवश्यकता नहीं थी। किन्तु सदा ही कोई न कोई ज़रूरतमन्द आ जाता। किसी को हाथ धोने की तिपाई के नीचे रखने को कठौते की ज़रूरत होती, किसी को बरसाती पानी जमा करने को पीपे की, किसी को नमक लगे खीरे या खुमियाँ रखने के टब अथवा फूल लगाने के लिए लकड़ी के दाँतेदार गमले की ज़रूरत रहती थी।

मीत्या ज़रूरत के अनुसार बर्तन बनाकर दे देता और उन्हें बनवाने वाला भी उसे अच्छे पैसे देता। किन्तु पीपे आदि बनाने के काम के अलावा वह मर्दों वाले दूसरे सभी काम भी सँभालता और सामूहिक खेतों के साझे कामों में भी भाग लेता। वह सभी बैठकों में उपस्थित रहता, सामूहिक किसानों की आवश्यकता को समझने की कोशिश करता तथा निस्सन्देह उन्हें कुछ समझ भी जाता था।

यह भी अच्छी बात थी कि नास्त्या अपने भाई से दो साल बड़ी थी, अन्यथा वह अपनी डींग हाँकने की कोशिश करता और उनके बीच मैत्री तथा अद्भुत आपसी समानता कभी कायम न रह पाती। फिर भी कभी-कभी ऐसा होता कि उसे यह याद आ

जाता कि कैसे उसके पिता उसकी माँ को अक्ल दिया करते थे, समझाया-बुझाया करते थे और तब पिता की नकल करते हुए उसके दिमाग पर भी अपनी बहन नास्त्या को नसीहतें देने का भूत सवार हो जाता। किन्तु नास्त्या उसकी बहुत कम परवाह करती और खड़ी-खड़ी केवल मुस्कराती रहती... तब 'नन्हा किसान' क्रोध में आ जाता, अकड़ जाता और त्योरी चढ़ाकर कहता:

"यह भी ख़ूब रही!"

"तुम अकड़ किसलिए रहे हो?"

'यह भी ख़ूब रही!" उसका भाई क्रोध में दोहराता। "तुम अकड़ रही हो, नास्त्या, मैं नहीं।"

"नहीं, मैं नहीं, तुम!"

"यह भी ख़ूब रही!"

अपने जिद्दी भाई को थोड़ा-सा तंग करने के बाद नास्त्या उसकी गुद्दी को जरा थपथपा देती। और ज्यों ही बहन का छोटा-सा हाथ उसकी गुद्दी को छूता, घर का स्वामी पिता के अन्दाज़ में बोलना बन्द कर देता।

"आओ, निराई करें," बहन कहती।

और वे दोनों खीरों अथवा चुकन्दर के खेत को निराने या आलू बोने लगते।

2

खट्टी, किन्तु पौष्टिक क्रेनबेरियाँ गर्मियों में दलदल में पैदा होती है और पतझड़ के अन्त में इन्हें इकट्ठा किया जाता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति यह बात नहीं जानता कि क्रेनबेरियां तभी सबसे अच्छी पर्याप्त जैसा कि हमारे यहाँ कहा जाता है तभी "मीठी" होती हैं, जब वे जाड़े भर बर्फ़ के नीचे दबी रहती हैं।

इस साल के वसन्त में अप्रैल महीने के अन्त तक देवदारों के झुरमुटों के नीचे बर्फ़ जमी हुई थी। किन्तु दलदलों में अपेक्षाकृत कम ठण्ड थी: वहाँ जरा भी बर्फ़ बाकी नहीं रही थी। लोगों से यह मालूम होने पर मीत्या और नास्त्या ने क्रेनबेरियों की खोज में जाने का निर्णय किया। नास्त्या ने सुबह होने के पहले ही अपने सभी जानवरों को चारा डाल दिया। मीत्या ने अपने पिता की दुनाली 'तूल्का' बन्दूक कन्धे पर रखी, जंगली पक्षियों को आकर्षित करने के लिए सीटियाँ जेब में डालीं और कम्पास लेना भी नहीं भूला। उसके पिता इस कम्पास के बिना कभी जंगल में नहीं जाते थे। मीत्या ने उनसे अक्सर पूछा था:

"आप सारी उम्र जंगलों में जाते रहे हैं। आप उन्हें अपने हाथ की हथेली की भाँति जानते हैं। फिर आपको इस कम्पास की क्या आवश्यकता रहती है?"

"देखो, बात यह है, मीत्या", उसके पिता उत्तर देते, "जंगल में यह चीज़ माँ से भी अधिक सहायक होती है। कई बार आकाश बादलों से ढक जाता है और सूरज का प्रकाश न रहने पर रास्ता मालूम करना कठिन हो जाता है। तब अपनी अटकल से दिशा

का अनुमान लगाने में गलती भी हो जाती है, आदमी भटक जाता है और भूख सताने लगती है। किन्तु यदि कम्पास हो, तो बस, सूई पर नज़र डालो और यह मालूम हो जाता है कि घर कहाँ है। सूई को देखते हुए घर पहुँच जाओ और वहाँ पहुँचते ही भोजन मिल जायेगा। यह सूई तुम्हारी सर्वोत्तम संगिनी है - तुम्हारे साथी तुम्हें धोखा दे सकते हैं, किन्तु यह सूई, तुम चाहे इसे कितना ही क्यों न घुमाओ, सदा उत्तर की ओर ही संकेत करती रहती है।"

इस अद्भुत वस्तु को ध्यान से देखने के बाद मीत्या ने सूई को एक ही जगह टिका दिया, ताकि वह रास्ते भर व्यर्थ ही न हिलती जाये। उसने पिता की तरह अपने पैरों पर ढंग से पट्टियाँ लपेटीं और घुटनों तक के बूट पहन लिये। तब उसने एक इतनी पुरानी छज्जेदार टोपी, जिसका छज्जा फटकर दो भागों में बँटा हुआ था, सिर पर रख ली। उसका ऊपरी हिस्सा सूरज की तरफ़ ऊपर को उठ गया था और निचला हिस्सा लगभग नाक तक पहुँच रहा था। इसके बाद उसने अपने पिता की जाकेट पहनी या यूँ कहिये वह कालर पहना, जिसके साथ कभी हाथ से काते गये बढ़िया सूत के कपड़े के कुछ टुकड़े ही लगे रहे गये थे। उसने कमरबन्द से इन टुकड़ों को कस दिया। पिता की जाकेट उसके लिए कोट के समान थी और ज़मीन तक पहुँच रही थी। शिकारी के बेटे ने अपने कमरबन्द में एक कुल्हाड़ा खोंस लिया, कम्पासवाला थैला अपने दायें कन्धे पर लटकाया और दुनाली 'तूल्का' बन्दूक को बायें कन्धे पर टिकाकर वह पक्षियों तथा जंगली जानवरों के लिए बहुत भयानक-सा बन गया।

नास्त्या तौलिये में बँधी हुई एक बड़ी टोकरी को कन्धे पर लटकाकर तैयार हो गयी।

"इस तौलिये की ज़रूरत क्या है?" मीत्या ने पूछा।

"क्या ज़रूरत है?" नात्स्या ने दोहराया। "क्या तुम्हें याद नहीं कि माँ किस तरह खुमियाँ इकट्ठी करने जाया करती थीं?"

"खुमियाँ! बड़ी समझदार बन रही हो! खुमियाँ तो सदा ही इतनी अधिक होती हैं कि उनके बोझ के कारण रस्सी से कन्धा कट जाता है।"

"और तुम यह कैसे कह सकते हो कि क्रेनबेरियाँ इससे भी अधिक नहीं होंगी?"

मीत्या अपना तकिया कलाम "यह भी ख़ूब रही!" दोहराने ही वाला था कि उसे लाम पर जाने से पहले पिता द्वारा क्रेनबेरियों के सम्बन्ध में कही गयी एक बात याद आ गयी।

"तुम्हें याद है पिता जी ने हमें क्रेनबेरियों और जंगल के पैलेस्तीन1 के बारे में एक बार क्या बताया था?" मीत्या ने पूछा।

1. पैलेस्तीन - ग्रामीणों द्वारा जंगल में किसी मनपसन्द स्थान को दिया गया नाम। - सं

मुझे याद है उन्होंने बताया था कि वह एक ऐसी जगह से परिचित हैं, जहाँ क्रेनबेरियाँ अपने आप हाथ में आ गिरती हैं," नास्त्या ने कहा। "किन्तु मैं किसी पैलेस्तीन के बारे में कुछ नहीं

जानती। मुझे याद है, उन्होंने हमें एक भयानक स्थान ‘अन्धी दलदल’ के बारे में बताया था।"

"हाँ, पैलेस्तीन इससे थोड़ा आगे है," मीत्या ने कहा। "पिता जी का कहना था कि ‘ऊँचे टीले’ तक जाकर उत्तर की ओर चलते जाओ और जब तुम ‘गूँजते वन’ के टीले को लाँघ लो, तो भी उत्तर की ओर ही आगे चलते जाना और तब तुम क्रेनबेरियों के कारण रक्त की तरह लाल हुए पैलेस्तीन में पहुँच जाओगे। आज तक कोई भी वहाँ नहीं पहुँच पाया है।"

मीत्या ने घर से बाहर निकलते हुए यह कहा था। नास्त्या को इसी समय याद हो आया कि पिछली शाम को उबाले गये आलुओं का एक पतीला भरा रखा है। पैलेस्तीन के बारे में सभी कुछ भूलकर वह चुपके से चूल्हे की ओर गयी और आलुओं को टोकरी में डाल लायी।

"हो सकता है हम रास्ता भूल जायें," उसने अपने आपसे कहा। "हमारे पास काफ़ी रोटी और दूध की बोतल है और फिर आलू भी तो काम आ सकते हैं।"

उसका भाई, जो यह समझता था कि उसकी बहन कहीं पास ही में है, उसे अदभुत पैलेस्तीन के सम्बन्ध में बताता रहा। किन्तु वहाँ पहुँचने के लिए ‘अन्धी दलदल’ को लाँघना पड़ता है और वहाँ अनेक इंसान, गायें और घोड़े मर चुके हैं।

"हाँ, तो यह पैलेस्तीन क्या है?" नास्त्या ने पूछा।

"तो तुम मेरी बात सुन नहीं रही थी?" उसने आश्चर्य से ऊँची आवाज़ में पूछा।

और उसने चलते हुए धैर्यपूर्वक वह सभी कुछ दोहरा दिया जो पैलेस्तीन के सम्बन्ध में पिता जी से सुना था। मीठी क्रेनबेरियों वाला यह पैलेस्तीन आज तक अनजाना ही रहा था।

3

'ब्लूदोवो दलदल', जहाँ हम स्वयं भी कई बार मार्ग भूल चुके हैं, लगभग हर बड़ी दलदल की भाँति बेदमजनूँ तथा एलडर, आदि वृक्षोंके झुण्डां से आरम्भ होती है। हाथ में कुल्हाड़ा लिये पहला व्यक्ति इस दलदली मार्ग से गुजरा और उसने अपने पीछे आने वालों के लिए पगडण्डी बना दी थी। दलदल की सतह पर स्थित छोटे-से टीलों को इंसानी पैरों ने जी भरकर रौंदा और इस प्रकार यह पगडण्डी बहते पानी से भरी हुई एक खाई बन गयी। बच्चों ने किसी कठिनाई के बिना मुँह अँधेरे ही इस जगह को पार कर लिया। जब झाड़ियाँ दृष्टि मार्ग में बाधक न रहीं, तो सुबह की हल्की रोशनी में दलदल साफ़ दिखायी देने लगी। दलदल समुद्र के समान लगती थी। हकीकत यह है कि यह 'ब्लूदोवो दलदल' किसी जमाने में एक समुद्र की तह थी। जैसे वास्तविक समुद्र में द्वीप तथा रेगिस्तान में नखलिस्तान होते हैं, वैसे ही दलदलों में टीले भी पाये जाते हैं। हमारी 'ब्लूदोवो दलदल' के टीले रेतीले तथा ऊँचे सनोबरों से ढँके हुए हैं। लोग इन्हें 'गूँजता वन' कहकर पुकारते हैं। दलदल में थोड़ी दूर जाकर

बच्चे निकटवर्ती टीले पर, जिसे 'ऊँचा टीला' कहा जाता है, जा पहुँचे। इसकी चोटी पर खड़े होकर वे प्रातःकाल के धुँधले प्रकाश में 'गूँजते वन' को देख सकते थे।

'गूँजते वन' में पहुँचने से पहले ही उन्हें रास्ते के साथ-साथ रक्त जैसी लाल-लाल बेरियाँ दिखायी दीं। शुरू में क्रेनबेरियों के इन अभिलाषाओं ने झटपट इन्हें अपने मुँह में डाल लिया। पतझड़ की क्रेनबेरियाँ कभी न चखने वाला व्यक्ति यदि वसन्तकालीन क्रेनबेरियाँ खाये, तो उनकी खटास से उसका तो बुरा हाल हो जाये। किन्तु ये देहाती यतीम बच्चे भलीभाँति जानते थे कि पतझड़ की क्रेनबेरियों का स्वाद कैसा होता है और इसलिए अब वसन्त की क्रेनबेरियों को खाते हुए बार-बार दोहराने लगे:

"ये कितनी मीठी हैं!"

'गूँजते वन' में बच्चों को अप्रैल के महीने में भी बिलबेरी गहरे हरे रंग के पत्तों से ढँका हुआ मनोरम वन-प्रांगण दिखायी दिया। पिछले वर्ष की इस हरियाली में कहीं-कहीं हिम-पुष्प और बैंगनी रंग के छोटे-छोटे सुगन्धित फूल, जिन्हें 'भेड़िये की छाल' का नाम दिया जाता है, झाँकते दिखायी देते थे।

"इनकी खुशबू बड़ी प्यारी होती है। एक तोड़कर देखा तो," मीत्या ने कहा।

नास्त्या ने एक डण्डी तोड़ने का यत्न किया, किन्तु असफल रही।

"इसे 'भेड़िये की छाल' क्यों कहा जाता है?" उसने पूछा।

"पिता जी ने बताया था कि भेड़िये इनसे अपने लिए टोकरियाँ बनाते हैं," उसके भाई ने जवाब दिया।

और वह हँस पड़ा।

"क्या अब भी यहाँ भेड़िये रहते हैं?"

"बेशक रहते हैं! पिता जी का कहना था कि भयानक 'भूरा सामन्त' भेड़िया भी यहीं रहता है।"

"अरे हाँ, वही, जो युद्धपूर्व हमारी भेड़ों को फाड़ डालता था।"

"पिता जी ने बताया था कि वह 'सूखे नाले' के तट पर गिरे हुए पेड़ों के पीछे रहता है।"

"क्या वह हम पर हमला नहीं करेगा?"

"ऐसा करके देख ले," दोहरे छज्जेवाली टोपी पहने शिकारी ने कहा।

बच्चे अभी बातचीत कर ही रहे थे कि इसी बीच अधिकाधिक उजाला होता गया था और 'गूँजता वन' पक्षियों के मधुर कलरव तथा छोटे-छोटे जानवरों की गुर्राहट, चीखों तथा आवाज़ों से गूँज उठा था। ये सभी आवाज़ें टीले से नहीं आ रही थीं, बल्कि दलदल की मूक, नम सतह से आती हुई आवाज़ें टीले से टकराकर गूँज पैदा कर रही थीं। सूखा, चीड़ वृक्षों से ढँका हुआ और गूँजने वाला टीला उन सभी आवाज़ों को प्रतिध्वनित कर रहा था।

बेचारे पक्षी और जानवर केवल एक सुन्दर शब्द कहने के लिए,

जो सभी की समझ में आ जाये, कितना अधिक जोर लगा रहे थे! मीत्या और नास्त्या जैसे सीधे-सादे बालक भी उनके इस यत्न को समझ रहे थे। वे सभी केवल कोई एक सुन्दर शब्द कहने को उत्सुक थे।

टहनी पर बैठा हुआ एक पक्षी गाता दिखायी दे रहा था। और जोर लगाने से उसका रोयाँ-रोयाँ काँप रहा था। किन्तु पक्षी हमारी भाँति शब्द नहीं बोल सकते। इसलिए उन्हें अपना मनोभाव समझाने के लिए चहचहाना और चीखना-चिल्लाना पड़ता है।

"तेक-तेक!" एक वृहदाकार जंगली पक्षी चिल्लाया। किन्तु उस घने जंगल में उसकी आवाज़ कठिनाई से ही सुनायी दी।

"क्वाक-क्वाक!" नदी के ऊपर से उड़ते हुए नर-बतख ने चीखकर कहा।

"क्राक-क्राक!" झील की ओर से मादा-बतख की आवाज़ सुनायी दी।

"गू-गू!" भोज वृक्ष से एक सुन्दर बुलफिंच पक्षी की आवाज़ आयी।

चौड़े काँटे की भाँति लम्बी चोंचवाला भूरे रंग का स्नाइप पक्षी जंगली मेढे जैसी मिमियाती आवाज़ से वातावरण को गुँजा रहा था। जंगली मुर्ग कुछ इस तरह से चिल्ला रहा था, "मैं हूँ, मैं, मैं!" कहीं पर काला मुर्ग बड़बड़ा रहा था तथा सफ़ेद तीतर

शैतान की तरह हँस रहा था।

हम शिकारियों ने बहुत वर्ष पहले, अपने बचपन में ही उन शब्दों को समझना, उनमें भेद करना और उनका स्वागत करना सीख लिया था, जिनका उच्चारण करने को ये पक्षी व्यर्थ ही यत्न कर रहे थे। और जब हम मुँह अँधेरे ही जंगल में जाते हैं और इन आवाज़ों को सुनते हैं, तो हम उन्हें कहते हैं, "नमस्कार!" मानो वे इस शब्द को समझ सकते हों।

और तब वे भी खुश दिखायी देते हैं जैसे कि इंसानों के मुँह से निकलने वाले ये अदभुत शब्द उनकी समझ में आ गये हों।

प्रत्युत्तर में वे क्वाक-क्वाक और तेक-तेक, आदि आवाज़ों से हमारा अभिवादन करते हुए कहते हैं:

"नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार!"

किन्तु इन आवाज़ों में से एक आवाज़ बिल्कुल अलग और भिन्न सुनायी दे रही थी।

"यह आवाज़ सुनती हो?" मीत्या ने कहा।

"बेशक सुन रही हूँ," नास्त्या ने जवाब दिया। "मैं इसे बहुत देर से सुन रही हूँ।

"न जाने क्यों, मुझे इस आवाज़ से डर लग रहा है।"

"डरने की कोई बात नहीं। पिता जी ने मुझे इसके बारे में बताया था - ये ख़रगोश हैं जो वसन्त में इस भाँति चीखते हैं।"

"ये ऐसा क्यों करते हैं?"

"पिता जी ने बताया था कि वे ‘नमस्कार, खरगोशिनी!’ कहने का यत्न करते हैं।’

"और यह गरजती हुई-सी आवाज़ क्या है?"

"पिताजी ने बताया था कि यह बड़ा जंगली बगुला है।"

"यह किसलिए गरजता है?"

"पिता जी ने बताया था कि उसकी भी संगिनी होती है और वह भी अपने ढंग से उसे ‘नमस्कार’ कहता है।"

सहसा हर वस्तु ताज़ादम और सजीव-सी दिखायी देने लगी मानो तमाम धरती धो दी गयी हो। आकाश चमक उठा और वृक्षों की छाल और कोंपलों से भीनी-भीनी सुगन्ध आने लगी। और उसी दम अन्य सभी आवाज़ों को दबाती हुई एक बिल्कुल भिन्न तथा विजयोन्मत्त आवाज़ सुनायी दी। यह आवाज़ कुछ ऐसी थी मानो बहुत-से लोग एक साथ खुशी से चिल्ला उठे हों:

"विजय! विजय!"

"यह क्या है?" नास्त्या ने पुलकित होते हुए पूछा।

"पिता जी ने बताया था कि सारस इस तरह से सूर्य का अभिवादन करते हैं। इसका अर्थ है कि सूरज शीघ्र ही आकाश में ऊपर चढ़ता दिखायी देगा।"

मीठी क्रेनबेरियों की खोज में जाने वाले ये बालक जब बड़ी

दलदल में पहुँच भी चुके थे, तब भी सूरज आकाश में साफ़ तौर पर दिखायी नहीं देने लगा था। इस जगह अभी सूर्य नमस्कार की रस्म अदा होनी शुरू नहीं हुई थी। छोटे और झुके हुए देवदार तथा भोज वृक्षों के ऊपर अभी तक धुंध का कम्बल-सा छाया हुआ था और 'गूँजते वन' की सभी अद्भुत आवाज़ें मानो इसी कम्बल में अटककर रह जाती थीं। केवल मन को उदास करने वाली, किसी के कराहने की आवाज़ साफ़ तौर पर सुनी जा सकती थी।

"यह कैसी आवाज़ है, मीत्या?" नास्त्या ने सिकुड़ते हुए पूछा। "यह दूर से आने वाली भयाकन हूँक क्या है?"

"पिताजी का कहना था," मीत्या ने जवाब दिया, "यह 'सूखे नाले' की ओर से आने वाली भेड़ियों की आवाज़ है। मेरा अनुमान है कि यह 'भूरे सामन्त' भेड़िये की आवाज़ है। पिता जी ने बताया था कि 'सूखे नाले' के तटवर्ती अन्य सभी भेड़िये मारे जा चुके हैं, किन्तु 'भूरे सामन्त' भेड़िये को मारने में किसी को भी सफलता नहीं मिली।"

"इस वक्त वह ऐसे भयानक ढंग से क्यों हूँक रहा है?"

"पिता जी ने बताया था कि वसन्त में भेड़ियों को खाने के लिए कुछ नहीं मिलता और इसलिए वे हूँकते हैं। फिर 'भूरा सामन्त' भेड़िया तो अकेला रह गया है, इसलिए भी हूँकता है।"

दलदल की नमी उनके शरीर में घुसकर उनकी हड्डियों तक को ठण्डा करती जा रही थी। इस नम और रिसती हुई दलदल में

उनका आगे बढ़ने को बिल्कुल मन नहीं हो रहा था।

"हम किधर जायेंगे?" नास्त्या ने पूछा।

मीत्या ने कम्पास निकाली और उत्तर दिशा मालूम करके एक धुँधली और अस्पष्ट-सी पगडण्डी की ओर संकेत करते हुए कहा:

"हम इस पगडण्डी पर उत्तर की ओर जायेंगे।"

"नहीं,"नास्त्या ने कहा, "हम उस बड़ी पगडण्डी पर जायेंगे, जहाँ सभी लोग जाते हैं। तुम्हें याद है न, पिता जी ने हमें बताया था कि वह 'अन्धी दलदल' कितनी भयानक जगह है और वहाँ कितने लोग तथा जानवर अपनी जान गँवा चुके हैं। नहीं, नहीं, प्यारे मीत्या, हमें उधर नहीं जाना चाहिए। सभी इस तरफ़ जाते हैं और इसलिए क्रेनबेरियाँ भी इधर ही होंगी।"

"बड़ी आयी कहीं की अक़्लमन्द!" शिकारी मीत्या ने उसे टोकते हुए कहा। "हम उत्तर की ओर उसी तरफ़ जायेंगे, जहाँ पिता जी के मुताबिक पैलेस्तीन है और जहाँ आज तक कोई नहीं पहुँच पाया है।"

नास्त्या ने यह देखकर कि उसका भाई झुँझलाने लगा है सहसा मुस्कराकर उसकी गुद्दी थपथपा दी। मीत्या एकदम शान्त हो गया और इन मित्रों ने कम्पास की सूई द्वारा दिखाये गये मार्ग पर आगे बढ़ना शुरु कर दिया। अब वे साथ-साथ न चलकर आगे-पीछे चल रहे थे।

4

कोई दो सौ वर्ष पूर्व बीजों को उड़ाकर लाने वाली तेज हवा चीड़ और देवदार के दो बीज एक साथ ही उड़ाकर 'ब्लूदोवो दलदल' में ले आयी। वे दोनों एक ही गड्ढ़े में एक बड़े समतल पत्थर के समीप एक साथ ही जा गिरे... तभी से देवदार और चीड़ के दोनों वृक्ष वहाँ एक साथ ही बढ़ते रहे। जब वे पौधे ही थे, तभी उनकी जड़ें एक दूसरे से उलझ गयी थीं। उनके तने भी प्रकाश की ओर साथ-साथ बढ़ते हुए एक-दूसरे को पीछे छोड़ने का यत्न करते रहे थे। भिन्न जातियों के इन दो वृक्षों ने जड़ों द्वारा अपने पोषण और शाखाओं से हवा तथा प्रकाश पाने के लिए संघर्ष किया। ज्यों-ज्यों वे बढ़े और उनके तने मोटे हुए, उन्होंने एक दूसरे के जीवित शरीर को अपनी सूखी शाखाओं से चीर डाला और कहीं-कहीं तो ये शाखाएँ आर-पार भी हो गयी थीं। जिस द्वेषपूर्ण हवा ने इन वृक्षों पर इतना दुखद जीवन थोप दिया था, वह कभी-कभी इनकी शाखाओं को झुकाने के लिए इनकी फुनगियों के ऊपर से गुजरा करती थी। और तब 'ब्लूदोवो दलदल' के तमाम क्षेत्र में जीवित प्राणियों से इतनी अधिक मिलती-जुलती इनकी कराहट और चीखें ऐसे फैल जातीं कि दलदल के काईदार छोटे-से टीले पर सूत के गोले की भाँति गुड़ी-मुड़ी होकर लेटी हुई लोमड़ी भी अपनी तेज नाक को ऊपर उठाकर इधर-उधर देखने लगती। इनकी कराहट और चीखें तमाम जीवित प्राणियों के दिलों को इतना विचलित कर डालती थीं, कि इन्हें सुनकर दलदल में रहने के कारण जंगली हो जाने वाला एक कुत्ता इंसान की अनुपस्थिति के कारण उदास होता

हुआ चिल्लाता और भेड़िया मनुष्य के लिए अपनी अमिट घृणा जाहिर करने के लिए गुर्राना शुरू कर देता।

जिस समय सूरज की पहली किरणें दलदल में उगे हुए देवदार और भोज वृक्षों के ऊपर से फैलती हुई 'गूँजते वन' को जगमगा रही थीं और चीड़ के वृक्षों के मज़बूत तने प्रकृति के किसी बड़े मन्दिर में जलनेवाली मोमबत्तियों के समान लग रहे थे, उसी समय ये दोनों बालक 'समतल पत्थर' के करीब पहुँचे। आकाश में ऊपर चढ़ते हुए सूर्य का अभिवादन करने वाला पक्षियों का कलरव बहुत मन्द स्वर में इस समतल पत्थर तक पहुँच रहा था। बच्चे यहीं आराम करने के लिए बैठ गये।

प्रकृति में सभी ओर पूर्ण निस्तब्धता थी और बालक, जो अब ठिठुर रहे थे, इतने चुप थे कि काले जंगली मुर्ग कोसाच ने उनकी ओर ध्यान तक नहीं दिया। वह काफ़ी ऊँचाई पर उस जगह बैठा था, जहाँ देवदार और चीड़ को शाखाओं ने आपस में उलझकर दोनों वृक्षों के बीच एक पुल-सा बना दिया था। उसके लिए बहुत ही चौड़े इस पुल पर बैठा हुआ कोसाच चीड़ की अपेक्षा देवदार वृक्ष के अधिक समीप था और चढ़ते सूरज की किरणों में फूलता-सा दिखायी देता था। उसकी कलगी एक लाल फूल की भाँति चमक रही थी और छाती के काले पंखों के बीच वाली नीली धारी अब लगभग हरी लग रही थी। उसकी इन्द्रधनुष जैसी सतरंगी और वीणा की भाँति फैली हुई दुम अत्यधिक सुन्दर दिख रही थी।

दलदल में उगे देवदार के नाटे वृक्षों से ऊपर जाते हुए सूर्य को देखकर उसने ऊँचे पुल पर अचानक एक छलाँग लगायी और दुम तथा पंखों के नीचे बर्फ़ जैसे श्वेत रोयें दिखाते हुए ऊँची आवाज़ में चिल्लाया:

"कू-की!"

काले जंगली मुर्ग के "कू" का अर्थ सम्भवतः "सूर्य" होगा और "की" को "नमस्कार" का समानार्थ माना जा सकता है।

कोसाच की इस प्रथम पुकार के उत्तर में सारी दलदल इसी ढंग की पुकारों से गूँज उठी। इसके साथ पंखों की जोरदार फड़फड़ाहट भी सुनायी दी और थोड़ी ही देर में हमारे कोसाच से मिलते-जुलते बड़े-बड़े पक्षी भारी संख्या में 'समतल पत्थर' के इर्द-गिर्द आकर बैठ गये।

ठिठुरते बालक ठण्डे पत्थर पर साँस रोककर बैठे हुए सूर्य की किरणों की प्रतीक्षा कर रहे थे, ताकि उन्हें कुछ गर्मी मिल सके। आखिरकार सूर्य की प्रथम किरण पास के नाटे देवदार वृक्षों की फुनगियों को जगमगाती हुई बालकों के गालों को छूने लगी। कोसाच ने अपनी कूद-फाँद और कू-की बन्द करके सूरज को अपनी श्रद्धांजलि अपिर्त की। अपने ऊँचे सिंहासन पर नीचे की ओर झुककर उसने अपनी लम्बी गर्दन को शाखा के साथ-साथ फैलाया और नदी के पानी जैसी कलकल की आवाज़ पैदा करते हुए एक लम्बी तान छेड़ी। उसके जवाब में दर्जनों अन्य पक्षियों ने, जो उसके जैसे जंगली मुर्ग़ ही थे, अपनी गर्दनें फैला दीं और

इस गान में साथ देने लगे। अब ऐसी आवाज़ पैदो हुई मानो किसी नदी की लहरें अदृश्य कंकड़ों से टकराकर गरज रही हों।

हम शिकारियों ने अन्धकारपूर्ण और ठण्डी सुबह के क्षणों में धड़कते दिलों से यह गान बार-बार सुना है और इसे समझने का प्रयास किया है। जब हमने उनकी बड़बड़ाहट को अपने ढंग से दोहराकर देखा, तो वह कुछ ऐसा बन पड़ा था:

गू-उर-तर
मैं झपटूँगा, तुम पर
गू-उर-तर
मैं झपटूँगा तुम पर, झपटूँगा तुम पर।

इस प्रकार काले जंगली मुर्ग़ मिलकर गा रहे थे और साथ ही लड़ाई के लिए भी तैयार हो रहे थे। और जिस समय ये पक्षी अपना गाना गा रहे थे, तभी देवदार की घनी फुनगी के बीच एक छोटी-सी घटना घट गयी। वहाँ एक कौवी अपने घोंसले में बैठी थी। वह घोंसले के बिल्कुल पास बैठे और मिलन-गान में योग देते हुए कोसाच की नज़र से बचने का भरसक प्रयत्न कर रही थी। कौवी बेहद चाहती थी कि कोसाच को दूर खदेड़ दे, किन्तु वह प्रातःकालीन ठण्डी हवा में अपने अण्डों को खुला छोड़ देने और इस तरह उनके ठिठुर जाने के ख्याल से डरती थी। घोंसले की रक्षा का भार कौवे पर था, किन्तु वह अभी तक अपनी प्रभात-फेरी से वापस नहीं आया था। सम्भवतः उसे अपनी उड़ान के दौरान कोई सन्देह पैदा करने वाली वस्तु मिल गयी थी और

इसीलिए उसने लौटने में देर कर दी थी। कौवे के लौटने की प्रतीक्षा करती हुई कौवी घोंसले में दुबकी-सी बैठी थी और चूहे की भाँति मूक थी। अचानक उसने अपने साथी को घोंसले की ओर आते देखा और ऊँची आवाज़ में पुकारा:

"काँय!"

स्पष्ट था कि वह उसे मदद के लिए बुला रही थी।

"काँय!" कौवे ने काँय-काँय की आवाज़ में गायक को सम्बोधित किया। इसका मतलब था कि यह मालूम नहीं कि कौन किस पर झपटेगा।

एक नज़र में ही सारी स्थिति को भाँपकर वह शाखाओं के मेल से बने पुल पर जा बैठा, जहाँ उसका घोंसला था और जहाँ बैठा हुआ कोसाच अपना मिलन-गान गा रहा था। कौवे का घोंसला चीड़ वृक्ष के समीप था, जबकि जंगली मुर्ग़ देवदार के तने के पास बैठा था। कौवा आगे घटनेवाली घटना की प्रतीक्षा करने लगा।

कौवे की ओर तनिक भी ध्यान न देकर काले जंगली मुर्ग़ ने एक ऐसी आवाज़ निकाली, जिससे सभी शिकारी भली भाँति परिचित होते हैं:

"कार-कार-काक!"

यह मुर्ग़ों के लड़ाई आरम्भ करने का संकेत था। उनके नुचे हुए पंख हवा में उड़ने लगे। अब पुल पर कौवे ने भी कोसाच की

ओर कुछ छोटे-छोटे डग भरे।

मीठी क्रेनबेरियों की खोज में निकले हुए हमारे शिकारी इस समय बुत बने बैठे थे। नाटे दलदली देवदार वृक्षों के ऊपर गर्म सूर्य साफ़ दिखायी देने लगा था। इसी समय आकाश में एक छोटा-सा बादल भी नज़र आया। यह ऊपर चढ़ते हुए सूर्य से ठंडे नीले तीर की भाँति टकराया और इसने सूर्य को मानो दो भागों में विभक्त कर डाला। उसी समय हवा के एक तेज झोंके ने चीड़ वृक्ष को देवदार की ओर झुका दिया और जवाब में देवदार चीख उठा।

पत्थर पर बैठकर आराम करके ताजादम होने वाले और सूर्य द्वारा गरमाये हुए बच्चे अपने सफर को जारी रखने के लिए उठ खड़े हुए। किन्तु पत्थर के ठीक पास से ही दलदल की खासी चौड़ी पगडण्डी दो दिशाओं में बँट गयी थी। एक पगडण्डी, जो निश्चित तथा स्पष्ट मालूम देती थी, दाईं ओर को मुड़ गयी थी, जबकि अस्पष्ट पगडण्डी सामने की ओर थी।

कम्पास से दिशाओं की जाँच करने के बाद मीत्या ने अस्पष्ट पगडण्डी की ओर संकेत करते हुए कहा:

"हमें इस पगडण्डी पर जाना चाहिए। यह उत्तर को जाती है।"

"पर यह तो पगडण्डी है ही नहीं," नास्त्या ने जवाब में कहा।

"यह भी ख़ूब रही!" मीत्या ने नाराजगी प्रकट की। "लोग इधर से गये हैं और इसका अर्थ है कि यह पगडण्डी है। हमें उत्तर

दिशा में ही जाना है। अब बोलना बन्द करो और आओ आगे चलें।"

अपने से छोटे मीत्या के सामने झुकने में नास्त्या ने अपमान अनुभव किया।

"काँय!" कौवी अपने घोंसले में से चिल्लायी।

कौवे ने पुल पर कुछ डग और बढ़ाये तथा इस बार उसने अपने तथा जंगली मुर्ग के बीच का आधा फासला तय कर डाला।

दूसरा गहरा नीला तीर सूरज के मुख को बींधता हुआ निकल गया और आकाश फिर से धुँधला हो गया।

नास्त्या ने हिम्मत करके अपने भाई को समझाने का यत्न किया।

"जरा देखो तो मेरी पगडण्डी कितनी साफ़ है," उसने कहा। "सब इसी पगडण्डी पर जाते हैं। क्या हम ही अन्य सभी से ज्यादा समझदार हैं?"

"दूसरे जाते हैं, तो जायें इस पगडण्डी पर," जिद्दी ‘नन्हे किसान’ ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। "हमें तो पिता जी की शिक्षा के अनुसार सूई का अनुकरण करते हुए पैलेस्तीन पहुँचने के लिए उत्तर दिशा में ही जाना चाहिए।"

"पिता जी हमें मनगढन्त किस्से सुनाया करते थे। हमारे साथ मज़ाक किया करते थे," नास्त्या ने कहा। "उत्तर में तो सम्भवतः कोई पैलेस्तीन है ही नहीं। सूई का अनुकरण करना मूर्खता की बात होगी। हम पैलेस्तीन में नहीं, बल्कि सीधे ‘अन्धी दलदल’

में जा पहुँचेंगे।"

"तो ठीक है," मीत्या ने सहसा कहा। "मैं तुमसे अधिक बहस नहीं करना चाहता। तुम अपनी इसी पगडण्डी पर जाओ, जहाँ सभी औरतें क्रेनबेरियों के लिए जाती हैं और मैं अपनी पगडण्डी पर अकेला ही उत्तर में जाऊँगा।"

और वह क्रेनबेरियाँ इकट्ठी करने के लिए टोकरी तथा खाने-पीने की चीज़ें अपने साथ लेने की चिन्ता किये बिना अपनी पगडण्डी पर ही चल दिया।

नास्त्या को उसे इन चीज़ों की याद दिलानी चाहिए थी, किन्तु वह इतनी अधिक गुस्से में थी कि उसके जाने के बाद उसने केवल थूक भर दिया। उसका चेहरा अंगारों की भाँति दहक रहा था। वह साफ़ नज़र आने वाली पगडण्डी पर क्रेनबेरियों की खोज में चल दी।

"काँय!" कौवी बोली।

तभी कौवे ने अपने और कोसाच के बीच का फासला जल्दी से तय करके पूरी शक्ति से उसे एक चोंच मारी। कोसाच को लगा मानो किसी ने उसकी पीठ पर उबलता पानी डाल दिया हो और वह दूर जा चुके अन्य मुर्ग़ों की ओर तेजी से लपका। किन्तु गुससे से भुनभुनाते हुए कौवे ने उसे जा दबोचा। उसने मुर्ग़ की दुम से सफ़ेद तथा बहुरंगे पंखों का गुच्छा उखाड़कर हवा में बिखरा दिया। वह उसका पीछा करता हुआ अपने घोंसले से काफ़ी दूर तक उड़ता चला गया।

इसी समय धूसर घटा आकाश में काफ़ी नीचे झुक आयी और उसने सूर्य तथा उसकी प्रखर किरणों को ढँक लिया। तेज हवा का एक झोंका आया। आपस में उलझी जड़ों और एक दूसरे की शाखाओं को चीरने वाले वृक्षों की आहों, कराहों ओर चीखों से सारी 'ब्लूदोवो दलदल' गूँज उठी।

5

वृक्ष ऐसे दर्दनाक ढंग से कराह रहे थे कि वन-रक्षक अन्तीपिच की झोंपड़ी के समीप बने आलुओं के गड्ढे से त्राव्का नामक शिकारी कुतिया भी बाहर निकलकर वृक्षों की चीखों के साथ स्वर मिलाते हुए चीखने लगी।

आखिर किस चीज़ ने इतनी सुबह ही कुतिया को अपना सुखद बिस्तर छोड़ने और वृक्षों की दर्दीली कराहों में सुर मिलाने के लिए विवश कर दिया था?

वृक्षों की चीखों और आहों-कराहों में कभी-कभी ऐसी आवाज़ें भी सुनायी देतीं मानो जंगल में पथ भूल जाने या अकेला छोड़ दिया जाने वाला बालक बिलख-बिलख रो रहा हो।

इस रुदन को त्राव्का कुतिया बिल्कुल ही सहन नहीं कर पाती थी। वह उसे आधी रात या रात के किसी पहर में भी जगा देता था। सदा एक साथ बढ़ने के लिए अभिशप्त इन वृक्षों के क्रन्दन को यह कुतिया बर्दाश्त ही नहीं कर पाती थी, क्योंकि इससे उसकी अपनी पीड़ा जाग उठती थी।

उस दुर्भाग्य को घटे अब दो वर्ष हो चले थे, जब उसके आराध्य वन-रक्षक, अन्तीपिच नाम के बूढे शिकारी की मृत्यु हुई थी।

वर्षों तक हम शिकार के लिए अन्तीपिच के पास जाते रहे थे और अन्तीपिच के बुढ़ापे को देखकर हमें ऐसा लगता मानो वह स्वयं भी यह नहीं जानते होंगे कि उनकी कितनी उम्र है, कि वह इसी तरह अपनी झोंपड़ी में रहते चले जायेंगे और कभी नहीं मरेंगे।

"अन्तीपिच, कितनी उम्र है आपकी?" हम पूछते। "अस्सी वर्ष?"

"इससे अधिक।"

"सौ साल?"

"इससे कम।"

यह सोचते हुए कि वह हमसे मजाक कर रहे हैं और वास्तव में अपनी असली उम्र जानते हैं, हम पूछते जाते:

"अन्तीपिच, ये मजाक छोड़िये, सच-सच बताइये कि आपकी कितनी उम्र है?"

"सच-सच," बुजुर्ग कहते। "मैं तुम्हें सच-सच बता दूँगा, यदि तुम मुझे पहले यह बता दो कि सच क्या है, कैसा होता है, कहाँ रहता है और कैसे मिल सकता है?" हमसे जवाब देते न बनता।

"आप हमसे बड़े हैं, अन्तीपिच," हम कहते। "निश्चय ही आप सत्य के बारे में हमसे अधिक जानते हैं।"

"मैं तो जानता हूँ," अन्तीपिच दबी हुई हँसी हँसकर कहते।

"तो हमें बताइये!"

"नहीं, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, तब तक नहीं बता सकता। खुद सचाई की खोज करो। मेरे मरने से पहले यहाँ आना और तब मैं तुम्हारे कानों में सारी सचाई फुसफुसा दूँगा। आओगे न?"

"हाँ, आयेंगे। पर यदि हम ठीक वक़्त का अन्दाज़ न लगा पाये और आप चल बसे, तो?"

बुजुर्ग ने उसी तरह अपनी आँखें सिकोड़ लीं, जिस तरह वह उस वक्त करते थे, जब उनका हँसने और मजाक करने को मन होता था।

"तुम दूध पीते बच्चे तो हो नहीं, अब तक तुम्हें खुद ही कुछ न कुछ सच्चाई जान लेनी चाहिए थी। और तुम मुझसे सचाई जानना चाहते हो। खैर! अगर मैं मरने लगूँगा और तुम लोग यहाँ, मेरे नज़दीक नहीं होंगे, तो मैं त्राव्का के कानों में सचाई फुसफुसा जाऊँगा। त्राव्का!" उन्होंने पुकारा।

पीठ पर काली धारीवाली बादामी रंग की बड़ी सारी कुतिया झोंपड़ी में दाखिल हुई। इसकी आँखों के नीचे काले रंग के अर्द्धचन्द्र बने हुए थे, जिनके कारण इसकी आँखें वास्तव से कहीं अधिक बड़ी लग रही थीं। और ये आँखें मानो पूछ रही थीं: "मालिक! मुझे किसलिए बुलाया है?"

अन्तीपिच ने एक ख़ास अन्दाज़ में उसकी ओर देखा। कुतिया

फौरन समझ गयी कि किसी काम से नहीं, बल्कि प्यार करने, हँसने-खेलने और मज़ाक करने के लिए ही उसे यहाँ बुलाया गया है। त्राव्का जोर-जोर से दुम हिलाती तथा अपना तन झुकाती हुई अन्तीपिच की ओर बढ़ने लगी। और जब वह रेंगती हुई बूढ़े के घुटनों के पास जा पहुँची, तो पीठ के बल लेट गयी ओर उसका भूरे रंग का पेट, जिस पर काले रंग के स्तनों के छः जोड़े थे, नज़र आने लगा। अन्तीपिच ने उसे थपथपाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया ही था कि वह अचानक उठ खड़ी हुई, उसने अपने सामने के पंजे मालिक के कन्धों पर रख दिये और उसकी नाक, गालों, यहाँ तक कि होंठों को भी चाटने लगी।

"बस, बस, काफ़ी हो गया," अन्तीपिच ने कुतिया को शान्त करते और आस्तीन से अपने चेहरे को पोंछते हुए कहा।

फिर उन्होंने उसका सिर थपथपाया और कहा:

"बस, काफ़ी है, अब जाओ।"

त्राव्का मुड़ी और बाहर चली गयी।

"हाँ, तो मेरे दोस्तो," अन्तीपिच ने कहा। "जरा सोचो, त्राव्का एक शिकारी कुतिया ही तो है, वह मेरी हर बात समझती है और तुम बुद्धू लोग पूछते जा रहे हो कि सचाई कहाँ है। खैर! ठीक वक्त पर यहाँ पहुँचने की कोशिश करना। अगर चूक गये, तो मैं त्राव्का के कानों में सत्य फुसफुसा जाऊँगा।"

तो अन्तीपिच चल बसे। और उसके शीघ्र ही बाद महान

देशभक्तिपूर्ण युद्ध छिड़ गया। उनके स्थान पर किसी अन्य वन-रक्षक की नियुक्ति न हुई और उनकी झोंपड़ी खाली पड़ी रही। झोंपड़ी अन्तीपिच से भी अधिक पुरानी थी और थूनियों पर टिकी हुई थी। मालिक के न रहने पर हवा ने एक दिन झोपड़ी से खिलवाड किया और वह उसी भाँति खण्ड-खण्ड होकर गिर गयी, जैसे बच्चे की फूँक से ताश का घर गिर जाता है।

एक साल भी नहीं बीता कि लट्ठो के बीच से ऊँची-ऊँची घास निकल आयी और वन-आँगन में लाल फूलों से ढँका हुआ झोपड़ी का एक छोटा-सा टीला ही बाकी रह गया। त्राव्का में जंगली जानवरों की भाँति आलू रखने के गड्ढे रहने लगी।

किन्तु उसके लिए जंगली जानवरों जैसे जीवन का अभ्यस्त होना आसान न था। वह अपने लिए नहीं, बल्कि अपने प्यारे और महान स्वामी अन्तीपिच के लिए शिकार करती थी। बहुत बार ऐसे हुआ था कि वह कोई ख़रगोश पकड़ लेती। वह उसे अपने अगले पंजों के नीचे दबाकर बैठ जाती और अन्तीपिच के आने की प्रतीक्षा करती रहती। अत्यधिक भूखी होने पर भी वह ख़रगोश को न खाती। और यदि किसी कारणवश अन्तीपिच न आते, तो वह ख़रगोश को अपने मुँह में दबा लेती और सिर ऊँचा किये हुए, ताकि वह इधर-उधर हिले-डुले नहीं, घर की ओर चल देती। इस प्रकार वह अपने लिए नहीं अन्तीपिच के लिए काम करती थी। दूसरी ओर उसका स्वामी उसे प्यार करता, खिलाता-पिलाता तथा भेड़ियों से उसकी रक्षा करता था। अब जब अन्तीपिच नहीं रहे थे, तो उसे सभी दरिन्दों की भाँति जंगल

में अपने लिए ही जीना था। अब भी कई बार ख़रगोश का पीछा करती हुई वह भूल जाती थी कि उसे अन्तीपिच के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए ही उसे पकड़ना और पकड़कर खा जाना है। बहुत बार त्राव्का को वर्तमान की बिल्कुल सुध न रहती और जब वह ख़रगोश को पकड़ लेती, तो उसे उठाकर अन्तीपिच के लिए ले जाती। और वहाँ वृक्षों की कराहें सुनकर उस टीले पर जा बैठती, जो कभी झोपड़ी था, और रोना शुरू कर देती..

'भूरा सामन्त' भेड़िया बहुत समय से इसी क्रन्दन को ध्यानपूर्वक सुने जा रहा था।

6

अन्तीपिच की झोपड़ी 'सूखे नाले' के समीप थी। कुछ वर्ष पहले स्थानीय किसानों ने हम शिकारियों की एक टोली को यहाँ बुलाया था। स्थानीय शिकारियों ने यह खबर दी थी कि 'सूखे नाले' के आसपास भेड़ियों के बच्चों का भारी जमघट है। हम किसानों की सहायता के लिए गये और हिंसक जन्तुओं के विरुद्ध संघर्ष करने के नियमों के अनुसार हमने अपना काम शुरू कर दिया।

रात के वक़्त हम 'ब्लूदोवो दलदल' में पहुँचें हम भेड़ियों की तरह गुर्राये और उत्तर में हमें 'सूखे नाले' के आसपास रहने वाले सभी भेड़ियों की आवाज़ें सुनायी दीं। इस प्रकार हमने यह ठीक मालूम कर लिया कि वे कहाँ रहते हैं और उनकी संख्या कितनी है। वे 'सूखे नाले' के टेढ़े मेढ़े और दुर्गम पाट में रहते थे। बहुत

समय पहले वहाँ नदी और वृक्षों के बीच एक बड़ा संघर्ष हुआ था। नदी अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ी, जबकि वृक्ष किनारों की रक्षा के लिए डटे रहे। नदी जीत गयी और वृक्ष उखड़कर नीचे जा गिरे। किन्तु उसके बाद नदी का पानी दलदल में जा मिला और उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। नदी के पाट में वृक्षों और कूड़े-करकट की तह पर तह जमती चली गई। भूमि पर पड़े हुए वृक्षों के तनों के बीच से घास ने अपना मार्ग बना लिया था और सिरपेंचे की बेल बहुत-से नौउम्र ऐस्प वृक्षों के तनों के सभी ओर एक रस्सी की भाँति लिपट गयी थी। इस तरह एक मजबूत बाँध या हम शिकारियों की भाषा में, भेड़ियों का अड्डा बन गया था।

भेड़ियों के अड्डे का पता लगाने के बाद हमने स्कीज पहनकर तीन किलोमीटर के घेरे में लाल रंग की बदबूदार झण्डियाँ लटका दीं। भेड़िये लाल रंग से डरते हैं और लाल रंग से ताजा रंगी हुई गन्धयुक्त झण्डियाँ उनके मन में भय उत्पन्न करती हैं। और अगर हवा तेज हो तथा झण्डियाँ जहाँ-तहाँ फड़फड़ाने लगें तो भेड़ियों के दिल बैठने लगते हैं।

निशानेबाजों की संख्या के अनुसार हमने झण्डियों के इस घेरे में 'रास्ते' बना लिये। हर 'रास्ते' में फर वृक्ष की घनी शाखाओं के पीछे एक शिकारी छिपकर खड़ा हो गया। रह-रहकर शोर मचाते और अपनी लाठियों को बजाते हुए हंकुओं ने भेड़ियों को नींद से जगाया। शुरू में वे दबे पाँव हंकुओं की उल्टी दिशा में बढ़े। मादा-भेड़िया आगे-आगे थी और बच्चे पीछे-पीछे। उनके पीछे, कुछ फासले पर भारी सिरवाला बदनाम और वह दुष्ट बूढ़ा

भेड़िया अकेला ही आ रहा था जिसे किसानों ने 'भूरे सामन्त' भेड़िये का नाम दे रखा था।

भेड़िये बहुत सावधानी से चल रहे थे। हंकुए तेजी से पीछा करते जा रहे थे। मादा-भेड़िया दौड़ने लगी। तभी अचानक..

उसे अपने सामने दिखायी दीं लाल झण्डियाँ!

वह दूसरी ओर मुड़ी, किन्तु वहाँ भी वही लाल झण्डियाँ थीं!

हंकुए अधिकाधिक समीप आते जा रहे थे। मादा-भेड़िया अपनी स्वाभाविक बुद्धि खोकर इधर-उधर दौड़ने लगी। अन्त में उसने एक 'रास्ता' खोज निकाला, किन्तु यहाँ उसके सिर में एक गोली लगी, जो केवल दस कदम के फासले से चलायी गयी थी।

इस तरह भेड़ियों के इस झुण्ड का सफाया हुआ, किन्तु 'भूरा सामन्त' भेड़िया ऐसी विकट परिस्थितियों से पहले भी निपट चुका था। बन्दूक की आवाज़ सुनकर वह झंडियों के ऊपर से सामने की ओर कूद गया। जब वह ऐसा कर रहा था, तो उस पर दो गोलियाँ चलायी गयीं, जिनमें से एक गोली ने उसके बायें कान तथा दूसरी ने आधी दुम का सफाया कर डाला।

यद्यपि उस झुण्ड का अन्त किया जा चुका था, तथापि 'भूरे सामन्त' भेड़िये ने केवल एक गर्मी में ही उतनी गौएँ और भेड़ें मार डालीं, जितनी सारी झुण्ड मिलकर मारता था। वह अक्सर किसी जूनिपर झाड़ी के पीछे छिपकर उस क्षण की प्रतीक्षा करता रहता, जब चरवाहे रेवड़ को अकेला छोड़ देते या सो जाते। ठीक

अवसर देखकर वह उन पर झपटता, भेड़ों को मारता और गौओं को घायल कर डालता। तब एक भेड़ को अपनी पीठ पर लादकर वह बाड़ को लाँघ जाता और 'सूखे नाले' में अपनी दुर्गम माँद में जा छिपता। सर्दी के मौसम में, जब ढोर-ढंकर चरने के लिए बाहर न निकलते तब वह पशुओं के किसी बाड़े में बहुत कम ही घुस पाता और गाँवों के कुत्तों के मांस पर ही गुजारा करता। अन्त में वह इस हद तक गुस्ताख हो गया कि उसने एक बार एक कुत्ते को, जो अपने स्वामी की स्लेज के पीछे दौड़ रहा था और भेड़िये को देखकर अपनी रक्षा के लिए स्वामी के पास स्लेज में जा छिपा था, मालिक के हाथ से ही छीन लिया।

'भूरा सामन्त' भेड़िया देहात के लोगों के लिए अत्यधिक भयावह बन गया था और किसानों ने एक बार फिर हमारे शिकारी-दल से सहायता की प्रार्थना की। पाँच बार हमने उसे झण्डियों के व्यूह में घेरने की कोशिश की और पाँचों बार वह हमारी झण्डियों के घेरे को फाँदकर निकल गया। और कड़ाके की ठण्ड और भूख से पीड़ित और वसन्त के आरम्भ होने के बाद भूरा भेड़िया अपनी माँद में बड़ी बेसब्री से वास्तविक वसन्त के आगमन और गाँव के चरवाहे की श्रृंगी की आवाज़ सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस सुबह, जब दोनों बालक आपस में झगड़कर अलग-अलग पगडण्डियों पर चल दिये थे, भूरा भेड़िया भूख के कारण बहुत खीझा हुआ अपनी माँद में पड़ा था। जब हवा के कारण

'समतल पत्थर' के समीपवर्ती वृक्ष, प्रातःकालीन माधुर्य को नष्ट करते हुए क्रन्दन करने लगे, तो वह इसे सहन न कर सका और अपनी माँद से बाहर आया। उसने अपनी नाक ऊपर उठायी, पेट को सिकोड़ा, जो भूख के कारण पहले ही बहुत सिकुड़ा हुआ था, अपने एकमात्र कान को ऊपर उठाया और कटी हुई दुम को सीधा करके ज़ोर से चीख उठा।

कितनी दर्दभरी चीख थी यह! ओह, राहगीर! अगर तुम रास्ते चलते हुए कहीं इसे सुनो, तो द्रवित मत हो जाना, अपनी भावनाओं को वश में रखना। सुना तुमने, यह मनुष्य के सर्वोत्तम मित्र कुत्ते की दर्दीली आवाज़ नहीं, बल्कि उसके सबसे भयानक शत्रु भेड़िये की चीख है, जो स्वयं अपने बुरे स्वभाव के कारण मौत का शिकार होता है। अपनी हमदर्दी को अपने पास ही रखना, राहगीर! इसे उन्हें मत देना, जो भेड़िये की भाँति अपनी दुर्दशा देखकर चिल्लाते हैं। इसे उनके लिए सहेजना, जो स्वामी को गँवा देने वाले कुत्ते की भाँति यह न जानते हुए रोते हैं कि अब अपने को किसकी सेवा में लगायें।

7

'सूखा नाला' 'ब्लूदोवो दलदल' को एक विस्तृत अर्द्धचक्र के रूप में घेरे हुए है। इसके एक तट पर भेड़िया रो रहा था और दूसरे पर कुत्ता। वृक्षों से टकराती हुई हवा उनके क्रन्दन को इधर-उधर फैला रही थी। वह इस बात की ओर जरा भी ध्यान नहीं देती थी कि वह किसको लाभ पहुँचा रही है। हवा इस बात की परवाह

नहीं करती कि चीखें और क्रन्दन कहाँ से आ रहे हैं - वृक्षों से, मनुष्य के सर्वोत्तम मित्र कुत्ते की ओर से अथवा मनुष्य के सबसे भयानक शत्रु भेड़िये की तरफ़ से। उसका काम तो केवल आवाज़ को वातावरण में फैलाना है। उसने बड़ी लापरवाही से स्वामी द्वारा अकेली छोड़ी गयी कुतिया की दर्दभरी आवाज़ भेड़िये के कानों तक पहुँचा दी। भूरा भेड़िया वृक्षों की कराहों तथा कुत्ते के क्रन्दन का अन्तर पहचानकर अपनी माँद से दबे पाँव चल पड़ा। उसने अपने अकेले कान को ऊपर उठाया, अपनी कटी हुई पूँछ को अकड़ाया और एक टीले पर चढ़ गया। इस अधिक अनुकूल स्थान से उसने यह मालूम कर लिया कि रोने की आवाज़ अन्तीपिच की झोपड़ी के पास से आ रही है और वह लम्बी-लम्बी छलाँगें मारता हुआ टीले से सीधा उसी दिशा में बढ़ने लगा।

इसे त्राव्का की खुशकिस्मती ही समझिये कि उसे भूख बेहद सता रही थी और इसलिए अपने उस दर्दनाक रुदन को जारी नहीं रख सकती थी, जिसके द्वारा या तो वह अपने भाग्य को कोस रही थी या अपने किसी नये स्वामी को अपने पास बुला रही थी। शायद इस कुतिया की समझ में अन्तीपिच मरे नहीं थे, बल्कि केवल इससे मुँह मोड़कर कहीं चले गये थे। शायद वह यह समझती थी कि हर इंसान अन्तीपिच ही है, सिर्फ उनके बहुत-से अलग-अलग चेहरे हैं। और अगर उन्होंने अपना एक मुँह मोड़ लिया था, तो शायद वही अन्तीपिच किसी भिन्न रूप में शीघ्र ही उसे दुबारा पास बुला लेंगे और तब वह इस नये

अन्तीपिच की भी वैसी ही वफादारी से खिदमत करेगी जैसी उसने पहले अन्तीपिच की थी..

शायद ऐसा ही था: त्राव्का अपनी पूरी शक्ति से अन्तीपिच को बुला रही थी। और भेड़िया मनुष्य के लिए, जिससे उसे बड़ी घृणा थी, कुतिया द्वारा की गयी इस प्रार्थना को सुनकर उसी दिशा में लम्बे डग भरने लगा, जिधर से यह आवाज़ आ रही थी। यदि कुतिया केवल पाँच मिनट तक अपने इस विलाप को और जारी रखती, तो भूरे भेड़िये ने उसे दबोच लिया होता। किन्तु अन्तीपिच के लिए अपनी व्यथा को व्यक्त करने के बाद उसे जोर की भूख महसूस हुई। उसने चिल्लाना बन्द कर दिया तथा ख़रगोश की टोह में चल दी।

यह साल का वह समय था, जब रात को घूमनेवाला जानवर, यानी ख़रगोश, दिन निकलते ही लेट नहीं जाता और डर के मारे दिन भर जागते हुए ऐसे लेटे-लेटे ही रात की प्रतीक्षा नहीं करता। वसन्त के दिनों में, दिन के समय भी ख़रगोश निडर होकर रास्तों पर और खेतों में घूमता है। चुनांचे एक बूढ़ा ख़रगोश उस स्थान पर आया, जहाँ बालक आपस में झगड़कर अलग हो गये थे और वह भी उन बालकों की भाँति उस 'समतल पत्थर' पर बैठकर आराम करने और इधर-उधर से आने वाली आवाज़ों को ध्यान से सुनने लगा। अचानक हवा के एक तेज झोंके और वृक्षों के क्रन्दन से वह डर गया, 'समतल पत्थर' से कूदा और अपनी पिछली टाँगों को आगे की ओर बढ़ाकर फुदकता हुआ उस 'अन्धी दलदल' की ओर भाग गया जिसे

मनुष्य के लिए बेहद भयानक समझा जाता था। उस समय तक वह अपने रोयें पूरी तरह नहीं गिरा पाया था, इसलिए ज़मीन पर न केवल अपने पंजों के चिह्न, बल्कि जाड़ों के कुछ रोयें भी झाड़ियों और पिछले वर्ष की ऊँची घास में छोड़ गया।

ख़रगोश को 'समतल पत्थर' से गये हुए काफ़ी समय हो चुका था, फिर भी त्राव्का को शीघ्र ही उसकी गन्ध मिल गयी। किन्तु दो इंसानों तथा आलुओं और रोटियों से भरी टोकरी की गन्ध ने उसे फौरन ख़रगोश का पीछा नहीं करने दिया।

और अब त्राव्का के सम्मुख यह जटिल समस्या थी कि क्या वह ख़रगोश की गन्ध के पीछे 'अन्धी दलदल' की ओर जाये, जहाँ एक छोटे इंसान के पाँवों के चिह्न भी थे अथवा दाईं ओर को जाने वाले व्यक्ति के पद-चिह्नों का अनुकरण करती हुई 'अन्धी दलदल' का चक्कर लगाये?

यदि त्राव्का यह निश्चित कर पाती कि उन दोनों बालकों में से किसके पास रोटी है, तो इस पहेली का अपने आप ही हल निकल आया होता। काश उसे रोटी का एक टुकड़ा खाने को मिल जाता! तब वह अपने लिए नहीं, रोटी देने वाले को भेंट करने के लिए ख़रगोश का पीछा करती।

वह किधर जाये, किस दिशा में बढ़े?..

इंसान के सम्मुख जब कोई गम्भीर समस्या आती है, तो वह सोचने लगता है और शिकारी कुत्ते की इसी अवस्था को शिकारी "दुविधा में पड़ना" कहते हैं।

इस प्रकार त्राव्का ने भी वही किया, जो ऐसी अवस्था में अन्य किसी भी शिकारी कुत्ते ने किया होता। अपनी नाक को हवा में ऊपर उठाकर उसने चक्कर लगाना शुरू किया। वह अपनी नाक को नीचे-ऊपर, दायें-बायें हिलाती जा रही थी। इस समय उसकी आँखों में बुद्धिमत्तापूर्ण चिन्तन की झलक देखी जा सकती थी।

जिस दिशा में नास्त्या गयी थी, उधर से आने वाले हवा के एक तेज़ झोंके से त्राव्का का चक्कर लगाने का यह क्रम सहसा ही बन्द हो गया। वह एक मिनट के लिए रुकी और फिर ख़रगोश की भाँति अपनी पिछली टाँगों के बल ऊपर उठी..

कुछ ऐसी ही स्थिति एक बार पहले भी, अन्तीपिच के जीवनकाल में भी पैदा हो चुकी थी। तब वन-रक्षक लकड़ी काटने का कठिन काम कर रहा था। निर्विघ्नता से काम करने के लिए अन्तीपिच ने त्राव्का को झोंपड़ी के समीप ही बाँध दिया था। वन रक्षक मुँह अँधेरे ही चला गया था। किन्तु त्राव्का दोपहर को ही यह जान पायी कि जंजीर का दूसरा सिरा एक हुक द्वारा मोटी रस्सी से बँधा हुआ है। ज्यों ही यह बात उसकी समझ में आयी, त्यों ही वह किसी तरह से झोपड़ी के पास की ऊँची भूमि तक, जहाँ से रस्सी शुरू होती थी, पहुँच गयी। तब वह अपनी पिछली टाँगों पर खड़ी होकर अगले पंजों से रस्सी को अपनी ओर खींचने लगी और दिन ढलते तक रस्सी को काटने में सफल हो गयी। इसके बाद गले में जंजीर लटकाये हुए वह अन्तीपिच की खोज में निकल पड़ी। अन्तीपिच को गये बारह

घंटे से अधिक समय बीत चुका था। गन्ध समाप्त हो चुकी थी और पदचिह्न हल्की फुहार द्वारा, जो वर्षा की अपेक्षा ओस-सी लग रही थी, मिटा दिये गये थे। किन्तु जंगल बिल्कुल शान्त था और वहाँ एक बार भी हवा का झोंका नहीं आया था। इसलिए अन्तीपिच की पाइप के धुएँ की तेज गन्ध उस समय तक भी वातावरण में फैली हुई थी। त्राव्का यह बात शीघ्र ही समझ गयी कि पद-चिह्नों की सहायता से अन्तीपिच का पता नहीं लगा सकती और इसलिए अपनी नाक को हवा में घुमाते हुए उसने सहसा तम्बाकू की गन्ध अनुभव की। और फिर धीरे-धीरे, कभी तो तम्बाकू की गन्ध को पाते और कभी उसे गँवाते हुए वह अन्त में अपने स्वामी के पास पहुँच गयी।

अब, जब तेज हवा का झोंका इस सन्देहपूर्ण गन्ध को उसके समीप लाया, तो इसे अपने इसी अनुभव की याद हो आयी। वह क्षण भर के लिए जड़वत प्रतीक्षा करती रही। जब दूसरा झोंका आया, तो वह अपनी पिछली टाँगों पर वैसे ही खड़ी हो गयी जैसे कि उसने उक्त घटना के समय किया था और उसे इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि रोटी और आलू की गन्ध हवा के साथ उसी दिशा से आ रही थी, जिधर एक बालक गया था।

हवा के साथ आयी गन्ध और टोकरी द्वारा छोड़ी गयी गन्ध की तुलना करने के लिए त्राव्का 'समतल पत्थर' के पास वापस चली गयी। तब उसने दूसरे बालक और ख़रगोश द्वारा छोड़े गये चिह्नों को एक बार फिर सूँघा। उसने अपने मन में शायद कुछ इस प्रकार तर्क-वितर्क किया होगा:

"ख़रगोश तो सीधा अपने दिन के बिल में गया होगा। वह कहीं समीप ही, 'अन्धी दलदल' के आसपास होगा। दिन भर वहीं रहेगा और कहीं नहीं जायेगा। किन्तु आलू और रोटियोंवाले इंसान के गायब हो जाने की बड़ी सम्भावना है। इसेक अलावा इन दो चीज़ों की तुलना ही क्या हो सकती है - एक तरफ़ तो खून-पसीना एक करके ख़रगोश को पकड़ना और उसे चीरकर अकेले ही खाना और दूसरी ओर मनुष्य से उसका प्यार तथा रोटी पाना। यह भी तो सम्भव है कि फिर से कोई अन्तीपिच मिल जाये।"

उन चिह्नों की ओर, जो सीधे 'अन्धी दलदल' की दिशा में जाते थे, उसने एक बार फिर देखा और उस पगडण्डी की ओर घूम गयी जो दलदल के गिर्द दाईं ओर को जाती थी। वह एक बार फिर अपनी पिछली टाँगों पर खड़ी हुई, उसने पूँछ को तनिक हिलाया और धीरे-धीरे उस पगडण्डी पर दौड़ने लगी।

8

कम्पास की सूई का अनुकरण करते हुए मीत्या जिस 'अन्धी दलदल' की तरफ़ गया था, वह बहुत खतरनाक जगह थी। गौओं और भेड़ों की बात तो एक तरफ़, वहाँ अनेक इंसानों की भी जानें जा चुकी थीं। 'ब्लूदोवो दलदल' की ओर जाने वाले हर व्यक्ति को 'अन्धी दलदल' के बारे में अवश्य ही अच्छी तरह से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

पीट के विस्तृत भण्डारों के कारण 'ब्लूदोवो दलदल' को सूरज

का खजाना कहा जा सकता है। हाँ, इसे इसी नाम से पुकारना उचित है और तपता हुआ सूर्य इस दलदल में पैदा होने वाली घास की हर पत्ती, हर फूल तथा बेरी का जन्मदाता है। इनमें से प्रत्येक को सूरज अपनी गर्मी देता है और इनमें से हरेक मुरझाने तथा नष्ट होने के बाद खाद के रूप में घास की उन नयी पत्तियों, फूलों, झाड़ियों और उन बेरियों को अपनी गर्मी प्रदान करता है जो उनके स्थान पर पैदा होती है। किन्तु दलदल का पानी पौधों की पैतृक सम्पत्ति के शिशु-पौधों तक पूरी तरह पहुँचने में बाधक होता है। हज़ारों वर्षों तक यह सम्पत्ति पानी की सतह के नीचे जमा होती रहती है और इस प्रकार दलदल सूरज का ख़ज़ाना बन जाती है। तब हरी घास की नष्ट जड़ों तथा पत्तों का यह सारा कोष पीट के रूप में मनुष्य को उत्तराधिकार में प्राप्त होता है।

'ब्लूदोवो दलदल' में पीट के विस्तृत भण्डार हैं। किन्तु पीट की तहें सभी जगहों पर एक जैसी मोटी नहीं है। 'समतल पत्थर' के आसपास, जहंा बालक कुछ देर बैठे थे, मुरझाये हुए पौधे हज़ारों वर्षों से एक दूसरे पर अपनी तहें जमाते चले गये थे। घास और पौधों की जड़ों की पुरानी से पुरानी तहें यहाँ थीं, किन्तु आगे, 'अन्धी दलदल' की ओर नयी और पतली तहें थीं।

कम्पास की सूई और पगडण्डी का अनुकरण करता हुआ मीत्या ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसके पाँव के नीचे की धरती, जो अभी तक नर्म थी, धीरे-धीरे फिसलनी होने लगीं वह ठोस दिखायी देने वाली भूमि पर अपना पैर रखता,

किन्तु पाँव नीचे की ओर धँस जाता। तब वह घबराकर अपने से प्रश्न करता कि कहीं उसका पाँव गड्ढे में तो नहीं पड़ गया? मार्ग में कुछ छोटे-छोटे टीले तो ऐसे हिलते-डुलते थे कि अपना पाँव बढ़ाने के पूर्व उसे कई बार सोचना पड़ता था। फिर कभी-कभी ऐसा भी होता कि उसके पाँव रखते ही धीरे-धीरे ऐसी गुड़गुड़ाहट होती जैसी कि कई बार पेट में होती है और यह आवाज़ दलदल के नीचे कहीं गायब हो जाती।

अब उसके पाँव के नीचे की धरती एक झूले के समान थी जो कीचड़ से भरी गहरी खोह पर झूलता-सा लगता था। इस झूलती हुई भूमि पर, आपस में उलझी जड़ों और पौधों के तनों का सहारा लेकर काई से ढँके हुए छोटे-छोटे और पतले-पतले देवदार उगे हुए थे। तेजाबी और दलदली भूमि होने के कारण वे अधिक ऊँचे नहीं बढ़ पाये थे और तब भी ये छोटे-छोटे वृक्ष कोई एक सौ साल या इससे भी अधिक उम्र के थे...टेढ़े-मेढ़े देवदार जंगल में उगने वाले वृक्षों की भाँति लम्बे, सुडौल और एक दूसरे के साथ-साथ स्तम्भों अथवा मोमबत्तियों की भाँति करीने से नहीं खड़े थे। जो वृक्ष जितना अधिक पुराना था, वह उतना ही अधिक भद्दा था। कहीं तो किसी वृक्ष की पातहीन शाखा इस ढंग से खड़ी थी मानो किसी को पकड़ने लगी हो, कहीं एक अन्य वृक्ष अपने हाथ में एक छड़ी-सी पकड़े दिख रहा था मानो समीप आने पर तुम्हें मारेगा, कहीं कोई देवेदार किसी कारणवश नीचे की ओर झुका हुआ था और कहीं वह मानो कुछ बुन-सा रहा था। उनमें से कोई भी तो वृक्ष जैसा नहीं लग रहा

था।

मीत्या के पाँव के नीचे घास-पात की तहें पतली होती जा रही थी। किन्तु पौधों की उलझली हुई जड़ें अवश्य ही इंसानी बोझ को सहन करने के लिए काफ़ी दृढ़ होंगी, क्योंकि मीत्या हर कदम पर धँसता हुआ और आसपास की वस्तुओं को दूर तक हिलाता हुआ भी आगे ही आगे चलता जा रहा था। मीत्या केवल उसी व्यक्ति पर विश्वास कर सकता था जो उससे पहले यहाँ से गया था और यह पगडण्डी भी बना गया था।

बड़ी बन्दूक और दोहरे छज्जे की टोपी वाले इस छोटे-से लड़के के निकट से गुजरने पर देवदार के बूढ़े वृक्ष बहुत व्यग्र दिखायी देते थे। उनमें से कोई तो कभी ऐसे तन जाता मानो इस उद्दण्ड मुसाफिर पर चोट करना चाहता हो और साथ ही आगे की ओर झुककर बाकी सभी बूढ़े वृक्षों को अपनी ओट में कर लेना चाहता हो। फिर वह पीछे हट जाता और तब दूसरा वृक्ष अपना हड्डी जैसा पतला हाथ मार्ग की ओर आगे बढ़ा देता। ऐसा लगता था मानो एक कदम और आगे जाने पर सहसा वन-प्रांगण सामने आ जायेगा, जिसके मध्य में रूसी लोक-कथाओं की चुड़ैल बाबा-यागा की झोपड़ी होगी और उसके इर्दगिर्द बाड़ पर इंसानी खोपड़ियाँ टँगी होंगी।

‘गूँजते वन’ में अपने घोंसले की रक्षा के लिए दलदल में सभी ओर उड़ते हुए काले कौवे ने दोहरे छज्जे की टोपीवाले इस छोटे-से शिकारी को देखा। अन्य पक्षियों की भाँति वसन्त में कौवा भी

एक खास अन्दाज़ में आवाज़ निकालता है। भारी अनुनासिक स्वर से "काँय-काँय!" करते हुए कौवे की इस आवाज़ की इंसान आसानी से कुछ नकल कर सकता है। कौवे की सामान्य आवाज़ में कुछ अन्य अस्पष्ट और हमारे कानों तक पहुँचने में असमर्थ ध्वनि-भेद मिले रहते हैं और इस कारण हम यह नहीं समझ पाते कि कौवा क्या कहता है और हम बहरे तथा गूँगे लोगों की भाँति केवल अनुमान ही लगा सकते हैं।

"काँय-काँय!" पहरा देने वाले कौवे ने ऊँची आवाज़ में यह सूचना दी कि दोहरे छज्जे की टोपीवाला एक छोटा-सा आदमी बन्दूक उठाये हुए ‘अन्धी दलदल’ की ओर जा रहा है और अब हमें खाने के लिए कुछ प्राप्त होने की आशा होनी चाहिए।

"काँय-काँय!" कौवी ने दूरी पर अपने घोंसले से जवाब दिया, जिसका अर्थ यह था :

"मैं सुन रही हूँ और प्रतीक्षा कर रही हूँ!"

मेगपाई, जो कौवों के नजदीकी रिश्तेदार हैं, कौवों की बातचीत सुनकर चरचर करने लगे। यहाँ तक कि लोमड़ी ने भी, जो इसी क्षण चूहे का शिकार करने में असफल होकर लौटी थी, कौवों की बातचीत सुनकर अपना कान ऊपर उठाया।

मीत्या ने यह सुना, पर जरा भी नहीं डरा - वह डरे भी तो क्यों, वह तो इंसान की बनायी हुई पगडण्डी पर ही चल रहा था। उसके जैसा ही इंसान वहाँ से जा चुका है, इसलिए वह भी निडर होकर इस पगडण्डी पर जा सकता है। कौवे की काँय-काँय

सुनकर वह घबराने के बजाय एक गाना गाने लगा:

काले कौवे, काले कौवे,
मेरे सिर के चारों ओर
उड़ उड़कर तू मत कर शोर।

गाना गाने से उसका हृदय तरंगित हो उठा और वह यह सोचने लगा कि पगडण्डी के कठिन और लम्बे रास्ते को कैसे छोटा किया जाये। नीचे नज़र डालने पर उसने पाया कि उसके पाँव द्वारा बनाये गये गड्ढे में फौरन पानी भर जाता था। उस पगडण्डी से जाने वाले सभी पाँवों ने पानी को हरी काईवाली सतह से काफ़ी नीचे कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप पगडण्डी के दोनों ओर, जो वास्तव में एक नाला था, सूखे किनारों के साथ-साथ ऊँची मीठी घास उग आयी थी। और इस घासकी बदौलत, जो वसन्त के शुरू में अन्य सभी जगह उगी हुई घास जैसी पीली न होकर सफ़ेद थी, मनुष्य द्वारा बनायी गयी बल खाती पगडण्डी को दूर तक देखा जा सकता था। मीत्या को दिखायी दिया कि दूरी पर गायब होने के पहले यह पगडण्डी साफ़ तौर पर बाईं ओर को मुड़ गयी है। उसने अपनी स्थिति जानने के लिए कम्पास पर नज़र डाली। सूई ने उत्तर की ओर संकेत किया, किन्तु यह पगडण्डी पश्चिम ओर जाती थी।

"टी-वी!" टिटहरी ने ऊँची आवाज़ में कहा।

"यह मैं हूँ, मैं हूँ!" जंगली मुर्ग ने मानो जवाब दिया।

"काँय-काँय!" कौवी को पहले से कहीं अधिक विश्वास दिलाते

हुए कौवा बोला।

और नाटे देवदारों से मेगपाइयों का शोर सुनायी देने लगा।

अपने गिर्द घूमकर देखने पर मीत्या को साफ़, सुरक्षित वन-प्रांगण दिखायी दिया, जहाँ टीले नीचे-नीचे होते हुए अन्त में समतल भूमि में बदल गये थे। किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि वन-प्रांगण के समीप दूसरी ओर सफ़ेद लम्बी घास भी दिखायी दे रही थी, जो मनुष्य द्वारा बनायी गयी पगडण्डी की वफादार संगिनी थी। ऊँची सफ़ेद घास की सहायता से उस पगडण्डी को ढूँढ़कर, जो उत्तर दिशा में नहीं जाती थी, मीत्या ने अपने आपसे कहा: "मैं बाईं ओर को किसलिए मुडूँ और टीले के बाद टीला क्यों पार करूँ, जबकि वन-प्रांगण से थोड़ी ही दूरी पर पगडण्डी साफ़ दिखायी दे रही है?"

और वह निडर होकर साफ़-सुथरे वन-प्रांगण को लाँघता हुआ आगे बढ़ चला..

शुरू में तो मीत्या को दलदल की अपेक्षा कीचड़वाली सतह पर चलना काफ़ी आसान लगा। किन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे गया, त्यों-त्यों उसका पाँव अधिकाधिक नीचे धँसने लगा और उसे बाहर निकालना कठिन होता गया। यहाँ तो गोजन अधिक अच्छी तरह चल सकता था, क्योंकि उसकी लम्बी टाँगें बड़ी मज़बूत होती हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह सोचे-समझे बिना दलदल और जंगल में एक जैसी तेजी से दौड़ता

रहता है। किन्तु मीत्या, जो अब खतरे से परिचित हो गया था, थोड़ी देर सोचने के लिए रुक गया। ज्यों ही वह रुका, उसकी टाँगें घुटनों तक नीचे धँस गयीं। दूसरी बार वह इससे भी अधिक धँस गया। अभी भी वह यत्न करके दलदल से बाहर निकल सकता था। उसने अपनी बन्दूक को दलदल की सतह पर रखकर उसके सहारे दलदल से निकलने और लौटने का विचार बनाया। किन्तु तभी चन्द कदमों की दूरी पर उसे लम्बी सफ़ेद घास के साथ-साथ इंसानी पैरों के चिह्न दिखायी दिये।

"मैं इसे लाँघ जाऊँगा," उसने कहा।

और उसने आगे की ओर बढ़ने के लिए जोर लगाया।

किन्तु अब देर हो चुकी थी। एक हताश घायल व्यक्ति की भाँति, जो यह कहकर अपनी हिम्मत बढ़ाता है कि मरना तो एक बार ही है, उसने आगे बढ़ने के लिए कई बार फिर से जोर लगाया। किन्तु इसी वक्त उसने अनुभव किया कि वह सभी ओर से छाती तक मजबूत गिरफ्त में आ चुका है। अब तो वह गहरी साँस भी नहीं ले पाता था, क्योंकि जरा भी हिलने-डुलने से वह और गहरा धँस जाता था। उसके लिए अब इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि अपनी बन्दूक को दलदल की सतह पर फैलाकर रख दे, दोनों हाथ रखकर उस पर झुक जाये और अपनी तेज साँस को धीमा करने का यत्न करे। उसने ऐसा ही किया। उसने अपनी बन्दूक कन्धे से उतारी, उसे अपने सामने रखा और दोनों बाँहों के सहारे उस पर झुक गया।

हवा के एक तेज झोंके के साथ उसे नास्त्या की ऊँची आवाज़ सुनायी दी :

"मीत्या-आ-आ!"

मीत्या ने चिल्लाकर जवाब दिया।

किन्तु जहाँ नास्त्या खड़ी थी, हवा उस दिशा से आती हुई पश्चिम दिशा में जा रही थी और इसलिए मीत्या की आवाज़ 'ब्लूदोवो दलदल' को लाँघती हुई पश्चिम में जा गूँजी, जहाँ नाटे देवदारों के जमघट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। केवल लम्बी दुमवाले, कलगीदार और दुबले-पतले मेगपाई ही एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ते, 'अन्धी दलदल' के इर्द-गिर्द अपनी स्वाभाविक उत्तेजना से चक्कर काटते अथवा फर वृक्ष की फुनगियों पर बैठते हुए अपनी "द्रित-तित-ती" और "द्रत-तत-ता" की आवाज़ों द्वारा मीत्या की आवाज़ों का जवाब देते थे। अधिक ऊँचाई से कौवा कहता :

"काँय-काँय!"

हर बुरी बात को समझने में तेज मेगपाइयों ने दलदल में धँसे इस बालक की दीन दशा को जल्दी से भाँप लिया। देवदारों से भूमि पर नीचे आकर उन्होंने सभी ओर से उसे घेर लिया और अपने ढंग से उस पर झपटने लगे।

दोहरे छज्जे की टोपी वाले बालक ने चिल्लाना बन्द कर दिया। चमकते आँसुओं की धारा उसके सँवलाये गालों से नीचे बह रही

थी।

9

जिस आदमी ने क्रेनबेरियों को कभी उगते न देखा हो, वह उनके पास से गुजरते हुए भी उनकी खोज में बहुत दूर-दूर तक दलदल में भटकता फिर सकता है। बिलबेरियों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं। इन्हें आसानी से देखा जा सकता है। ऊपर को उठा हुआ पतला-सा डंठल साफ़ दिखायी देता है और उसके सभी ओर होते हैं पंखों जैसे छोटे-छोटे हरे पत्ते। और छोटी-छोटी हल्की नीली बेरियाँ पत्तों की समीप ही लटकती नज़र आ जाती हैं। काउबेरियों के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। वे रक्त की भाँति लाल होती हैं और उनके गहरे हरे रंग के पत्ते बर्फ़ के नीचे दबकर भी पीले नहीं होते और बेरियाँ इतनी अधिक होती हैं कि तमाम भूमि रक्त से सनी-सी लगती हैं। या फिर व्होरटलबेरियों को ले लीजिये। ये भी दलदल में ही, छोटी-छोटी झाड़ियों के रूप में उगती हैं। ये बेरियाँ हल्के नीले रंग की और आकार में कुछ अधिक बड़ी होती हैं। ये अपने आप ही दिखायी दे जाती हैं। सुनसान जगहों पर, जहाँ काले जंगली मुर्ग़े रहते हैं, लाल मणि के रंग की बेरियाँ गुच्छों के रूप में लटकती दिखायी देती हैं। प्रत्येक लाल मणि हरे पत्तों में जड़ी-सी रहती है। केवल क्रेनबेरियाँ ही अपने को छिपाये रखती हैं। विशेषकर वसन्त के आरम्भ में दलदली उभारों में इन बेरियों को ऊपर से देखा नहीं जा सकता। जब किसी एक जगह ही बहुत-सी बेरियाँ हों, तभी उन्हें आसानी से देखा जा सकता है और तब मन में यह ख़्याल

आता है: "अवश्य ही किसी ने इन क्रेनबेरियों को नीचे गिरा दिया है," और उस वक्त तुम एक बेरी को चखने के लिए झुककर उठा लोगे। इसके बाद बेरियों से लदी बेल को ही खींच लोगे। तब तुम एक बड़े हार के आकार में जितनी भी लाल-लाह बेरियाँ चाहोगे, इकट्ठी कर सकोगे।

या तो इसलिए कि वसन्त में क्रेनबेरियाँ बहुत मँहगी होती है या इसलिए वे बहुत पौष्टिक और लाभदायक होती है तथा चाय के साथ बहुत मजा देती हैं, औरतें इन्हें चुनते हुए थकतीं ही नहीं और उनका लालच बढ़ता ही जाता है। एक बार हमारे गाँव की एक बुढ़िया ने अपनी टोकरी को बेरियों से इतना अधिक भर लिया था कि वह उसे उठा ही नहीं सकती थी। पर कुछ बेरियाँ फेंक दे या टोकरी को ही वहीं छोड़ दे, वह ऐसा करने को तैयार नहीं थी। इसलिए वह भरी टोकरी के पास बैठी हुई मुश्किल से मरते-मरते बची। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई औरत ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है, जहाँ बेरियाँ ही बेरियाँ होती हैं। यह विश्वास करने के लिए कि कोई उसे देख तो नहीं रहा, वह सभी ओर दृष्टि दौड़ाती है और तब दलदली भूमि पर पेट के बल रेंगने लगती है और यह तक नहीं देखती कि दूसरी ओर से इंसान जैसी न लगने वाली एक अन्य औरत भी इधर भी रेंगती आ रही है और उन दोनों का आमना-सामना होने पर उनके बीच झगड़ा होने लगता है।

शुरु-शुरु में नास्त्या ने हर बेरी को उसकी टहनी से तोड़ा। जब भी उसे कोई लाल बेरी दिखती, वह तोड़ने के लिए झुक जाती।

किन्तु शीघ्र ही उसने एक-एक बेरी के लिए झुकना बन्द कर दिया। वह एक बार में ही बहुत-सी बेरियाँ पाने की कोशिश करने लगी।

अब वह दूर से ही यह अनुमान लगा लेती थी कि किस जगह एक-दो नहीं, बल्कि मुट्ठी बेरियाँ मिल सकती हैं और वह केवल उसी जगह पर झुकती थी। इस प्रकार वह अपनी टोकरी में मुट्ठियाँ भर-भरकर बेरियाँ डालती गयी और हर बार पहले से अधिक बेरियाँ पाने के लिए उत्सुक होती गयी।

घर में काम करते हुए कभी एक घण्टा भी नहीं गुजर पाता था कि नास्त्या को अपने भाई का ध्यान न आये और वह उसे बुलाने की आवश्यकता न अनुभव करे। पर अब वह अकेला ही न जाने कहाँ चला गया था, नात्स्या को यह भी ध्यान नहीं आया कि खाने का सब सामान खुद उसी के पास है और उसका प्यारा भाई भूखा-प्यासा ही उस 'अन्धी दलदल' में कहीं चलता जा रहा है। वह तो अपने बारे में भी भूल गयी थी। उसे केवल क्रेनबेरियों की ही धुन सवार थी। वह अधिक, और अधिक बेरियाँ पाना चाहती थी।

वह अपने भाई से किसलिए उलझ पड़ी थी? इसलिए कि वह मनुष्य के पाँवों द्वारा भलीभाँति रौंदी हुई स्पष्ट पगडण्डी पर जाना चाहती थी। किन्तु अब क्रेनबेरियां के फेर में वह अनजाने ही खुद भी उस पगडण्डी से दूर हट चुकी थी।

एक क्षण के लिए वह तो जैसे अपनी नींद से जागी और सहसा

उसने अनुभव किया कि अपनी पगडण्डी से दूर हट गयी है। वह उस तरफ़ को मुड़ी, जिधर उसकी समझ के अनुसार पगडण्डी होनी चाहिए थी, किन्तु पगडण्डी वहाँ नहीं थी। तब वह तेजी से दूसरी दिशा में गयी, जहाँ दो वृक्षों की पातहीन शाखाएँ ऊपर को उठी हुई थीं - वहाँ भी कोई पगडण्डी नहीं थी। हाँ, यही वह क्षण था, जब उसे कम्पास की, मीत्या ने उसके बारे में जो कुछ बताया था, उसकी और अपने प्यारे भाई मीत्या की भी याद आ सकती थी जो भूखा तथा अकेला घूम रहा था और वह उसे पुकार सकती थी।

शायद नास्त्या ने अपने भाई के सम्बन्ध में और अधिक सोचा होता, यदि उसी क्षण उसे कुछ ऐसा दिखायी न दे जाता जो क्रेनबेरी के दीवानों को जीवन में एक बार भी देखने को नहीं मिलता..

बालकों में इस बात को लेकर झगड़ा हुआ था कि वे कौन-सी पगडण्डी पर जायें। किन्तु वे इस बारे में अनजान थे कि दोनों पगडण्डियाँ - एक बड़ी तथा दूसरी छोटी - 'अन्धी दलदल' गिर्द घूमकर 'सूखे नाले' के समीप मिल जाती थीं और अन्त में पेरेस्लाव्ल की बड़ी सड़क से जा मिलती थीं। नास्त्या की पगडण्डी सूखी घाटी में से 'अन्धी दलदल' के गिर्द चक्कर काटती हुई जाती थी, जबकि मीत्या की पगडण्डी दलदल के बिल्कुल किनारे-किनारे जाती थी। यदि मीत्या भूल न करता और पगडण्डी की ऊँची सफ़ेद घास पर नज़र टिकाये हुए ही चलता जाता, तो भी नास्त्या से बहुत पहले ही वहाँ पहुँच गया

होता, जहाँ नास्त्या अब पहुँची थी। जूनिपर झाड़ियों से घिरी हुई यह वही जगह थी जिसे पैलेस्तीन का नाम दिया जाता है और जहाँ मीत्या कम्पास के सहारे पहुँचना चाहता था।

किन्तु यदि मीत्या वहाँ पहुँच भी गया होता, तो भी रक्त की भाँति लाल उस पैलेस्तीन में वह भूखे पेट और टोकरी के बिना क्या करता? नास्त्या अपनी बड़ी टोकरी लिए पैलेस्तीन में पहुँची। वह खाने-पीने की चीज़ों के सम्बन्ध में बिल्कुल भूल चुकी थी और वे खट्टी बेरियों के नीचे दबी पड़ी थीं।

काश कि सुनहरी मुर्गी जैसी और लम्बी टाँगोंवाली इस छोटी-सी लड़की को पैलेस्तीन का सुखद दृश्य अपने सम्मुख आने पर भी भाई का ख्याल आ जाता और वह चिल्लाकर यह कहती:

"यह रहा पैलेस्तीन, प्यारे मीत्या!"

ओ भविष्यदर्शी जंगली कौवे! सम्भवतः तुम तीन सौ साल से जी रहे हो और निश्चय ही तुमने अपनी माँ से वह सभी कुछ जान लिया होगा जो तीन सौ वर्षों की लम्बी आयु में उसने जाना था। इस प्रकार हज़ारों वर्ष तक जो कुछ इस दलदल में हुआ है, उसकी सारी जानकारी एक पक्षी से दूसरे पक्षी को उत्तराधिकार में मिलती रही है। तुमने तो इतना कुछ देखा और जाना है, तुम थोड़ी देर को अपना कौवे का कार्य छोड़कर अपने सशक्त पंखों के सहारे एक सन्देश क्यों नहीं ले जाते, अपनी निडरता और बेतुकी दिलेरी के कारण दलदल में धँसकर प्राण देते हुए भाई का सन्देश, जिसे बेहद प्यार करने वाली, मगर बेरियों के फेर में

पड़ने वाली बहन भूल गयी थी।

ओ कौवे, उसे जाकर यह बताओ..

"काँय-काँय!" मृत्यु के मुँह में जाते हुए बालक के सिर के ऊपर से उड़ता हुआ कौवा चिल्लाया।

"मैं सुन रही हूँ," कौवी ने इसी काँय-काँय की आवाज़ में अपने घोंसले से जवाब दिया। "देखो! इससे पहले कि दलदल उसे निगल जाये, कुछ न कुछ हासिल कर लो।"

"काँय-काँय!" कौवे ने खतरे में पड़े भाई से थोड़ी दूर गीली ज़मीन पर रेंगती हुई बहन के ऊपर से उड़ते हुए दोहराया। इस बार उसकी "काँय-काँय" का यह मतलब था कि दलदल पर रेंगती हुई छोटी-सी लड़की कौवा परिवार के भोजन के लिए और भी अधिक उपयुक्त हो सकती है।

पैलेस्तीन के मध्य में क्रेनबेरियाँ नहीं थीं। यहाँ ऐस्प वृक्षों के झुण्डों से ढका हुआ एक छोटा-सा टीला था और उन वृक्षों के झुण्ड में एक बहुत बड़ा गोजन खड़ा था। गोजन एक ओर से देखने पर साँड़ जैसा लगता है और दूसरी ओर से साधारण घोड़े जैसा। सुडौल शरीर, फुर्तीली, पतली टाँगे और सूँघने की तेज शक्ति रखने वाली नुकीली नाक। किन्तु उसकी थूथनी कैसी टेढ़ी है, उसके सींग और आँखें कैसी अच्छी हैं! उसे देखने पर ऐसा लगता है कि शायद वह न तो साँड़ है और न घोड़ा ही। शायद वास्तव में वहाँ कुछ भी नहीं, बल्कि ऐस्प वृक्ष के घने झुण्डों में से दिखायी देने वाला बड़ा और धुँधला-सा माया-जाल मात्र है।

किन्तु नहीं, वह माया-जाल ही नहीं है, कुछ और भी है। क्या इस बड़े वन्य पशु के मोटे होंठों ने वृक्ष को नहीं छुआ था और क्या वृक्ष के नाजुक तने पर एक छोटा-सा सफ़ेद निशान नहीं पड़ गया था? यह वन्य-पशु इस प्रकार अपने पेट को भरता है। और शायद ही कोई ऐसा ऐस्प वृक्ष होगा जिस पर इसके दाँतों के निशान न दिखायी देते हों। नहीं, नहीं, यह इतनी स्थूल और भारी-भरकम काया दलदल का छलावा ही नहीं हो सकती। किन्तु यह कितनी अविश्वसनीय बात लगती है कि इतना बड़ा वन्य-पशु ऐस्प वृक्ष की छाल और दलदल की तिपत्ती घास खाकर जीवित रहता है! और क्यों इतनी ताकत रखने वाला इंसान खट्टी बेरियों तक को देखकर लालच से भर जाता है?

ऐस्प वृक्ष की छाल को छीलता हुआ ऊँचा गोजन रेंगती जा रही उस लड़की को शान्त भाव से देख रहा था।

क्रेनबेरियों के अतिरिक्त अन्य सभी चीज़ों की सुध भूलकर वह एक बड़े और काले ठूँठ की तरफ़ रेंगती जा रही थी। भीगी और मिट्टी में सनी हुई यह लड़की, जिसे हम लम्बी टाँगोंवाली तथा सुनहरी मुर्गी के समान जानते थे, बड़ी कठिनाई से ही टोकरी को अपने पीछे-पीछे घसीट पा रही थी।

गोजन तो उसे इंसान भी मानने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसके तौर-तरीके पशुओं से कुछ भिन्न नहीं थे और उन्हें वह वैसे ही उदासीनता से देखने का आदी था जैसे हम पत्थरों को देखा करते हैं।

एक बड़ा, काला ठूँठ सूर्य की किरणों को अपने भीतर समेटकर बहुत गर्म हो गया था। सन्ध्या हो रही थी और हवा तथा आसपास की सभी वस्तुएँ ठण्डी होती जा रही थीं। किन्तु यह बड़ा और काला ठूँठ अभी तक सूर्य की रश्मियों की उष्णता को सहेजे हुए था। छोटी-छोटी छः छिपकलियाँ दलदल से बाहर निकलकर उष्ण तने से जा चिपटीं; नींबू के रंगवाली चार तितलियों ने भी अपने पंखों को समेटा तथा बालोंवाली अपनी लम्बी नाक को उससे चिपकाकर बैठ गयीं और बड़ी-बड़ी काली मक्खियों ने भी अपने रात्रि-विश्राम के लिए उसी पर जाकर डेरा लगा लिया। क्रेनबेरी की एक लम्बी शाखा घास की डण्डियों तथा काले गर्म ठूँठ के हर उभरे भाग को छूती हुई उसके चारों ओर लिपटी हुई थी। ठूँठ के गिर्द कई घेरे डालकर वह दूसरी ओर नीचे को जा झुकी थी। इस मौसम में जहरीले साँप किसी गर्म जगह की तलाश करते रहते हैं और एक, आध मीटर लम्बा बड़ा साँप ठूँठ पर चढ़कर क्रेनबेरी की शाखा के सिरे पर कुंडली मारकर बैठ गया।

दलदल में रेंगनेवाली इस छोटी-सी लड़की ने एक बार भी अपना सिर ऊपर उठाकर इधर-उधर नहीं देखा। वह इसी तरह उस काले ठूँठ तक जा पहुँची और उसने क्रेनबेरी की उस शाखा को पकड़ लिया जिस पर साँप बैठा था। साँप ने अपना सिर ऊपर उठाकर फुँकार छोड़ी। लड़की ने भी चौंककर अपना सिर ऊपर उठाया।

बस, नास्त्या अभी सम्भली और उछलकर पीछे हट गयी। इसी

वक्त गोजन ने उसे इंसान के रूप में पहचाना और कूदकर ऐस्प वृक्षों के झुण्ड से बाहर चला गया। वह छलिया दलदल पर अपनी लम्बी और डण्डे जैसी मजबूत टाँगों को हल्के-हल्के, किन्तु तेजी से टिकाता हुआ उसी भाँति दौड़ चला जैसे खुश्क भूमि पर ख़रगोश दौड़ता है।

गोजन के कारण डरी हुई नास्त्या ने हैरानी से साँप की ओर देखा जो अब फिर पहले की भाँति ही कुण्डली मारकर धूप में लेटा हुआ था। नास्त्या को लगा मानो वह स्वयं ही ठूँठ पर कुण्डली मारे बैठी थी और साँप की सी केंचुली उतारकर न जाने कहाँ खड़ी थी।

उससे कुछ कमद की दूरी पर भूरे रंग और पीठ पर काली चिड़ियोंवाला एक बड़ा-सा कुत्ता खड़ा हुआ उसकी ओर देख रहा था। यह त्राव्का थी। नास्त्या ने उसे तत्काल पहचान लिया, क्योंकि त्राव्का अन्तीपिच के साथ कई बार गाँव आ चुकी थी। किन्तु उसे उसका नाम ठीक तौर पर याद नहीं था और इसलिए उसने उसे इस तरह पुकारा:

"मुराव्का, मुराव्का, यहाँ आओ, मैं तुम्हें रोटी दूँगी!"

यह कहकर उसने अपना हाथ टोकरी की ओर बढ़ाया। टोकरी क्रेनबेरियों से ऊपर तक ठसाठस भरी हुई थी और रोटी उनके नीचे थी।

इतनी बड़ी टोकरी भरने में कितने घण्टे लग गये थे, एक-एक क्रेनबेरी बटोरते हुए कितना वक्त बीत गया था! तो इस बीच

भूख से तड़पता हुआ मेरा प्यारा भाई कहाँ रहा, मैं उसे भूल क्यों गयी, मैंने अपने को और आसपास की हर वस्तु को भुला कैसे दिया?

उस ठूँठ पर, जहाँ साँप कुण्डली मारे बैठा था, उसने एक बार फिर नज़र डाली और अचानक चीख मारकर जोर से चिल्ला उठी:

"मीत्या, मेरे प्यारे भाई!"

और वह टोकरी के समीप भूमि पर गिरकर बिलखने लगी।

यही वह चीख थी जो 'अन्धी दलदल' में पहुँची थी ओर जिसे सुनकर मीत्या ने जवाब दिया था। मगर हवा उसका जवाब दूसरी दिशा में ले उड़ी थी।

10

तेज हवा का वह झोंका, जो नास्त्या की पुकार को मीत्या तक लाया था, सूर्यास्त के समय की निस्तब्धता से पहले अन्तिम नहीं था। उस समय डूबता हुआ सूरज मोटी तहवाले बादल के एक टुकड़े के पीछे से गुजर रहा था और वहाँ से उसके सुनहरे सिंहासन के पाये पृथ्वी को छू रहे थे।

हवा का वह झोंका भी अन्तिम नहीं था जो मीत्या द्वारा चीखकर दिये गये जवाब को दूसरी दिशा में उड़ा ले गया था।

हवा का अन्तिम झोंका तब आया, जब सूर्य के सुनहरे सिंहासन के पाये धरती में धँसते-से दिखायी देने लगे और एक बहुत बड़े,

स्पष्ट, सिन्दूरी गोले ने क्षितिज को छुआ। मधुर आवाज़ में गाने वाली छोटी-सी चिड़िया ने घाटी में अपनी मधुर तान छेड़ी। कोसाच ने 'समतल पत्थर' के समीपवर्ती शान्त वृक्षों में कुछ डरते-डरते अपना मिलनगान फिर से आरम्भ कर दिया। सारसों ने अपनी तीन आवाज़ें लगायीं, जो उनकी प्रातःकालीन विजय-पुकारें नहीं थीं, किन्तु जिनका कुछ ऐसा अर्थ रहा होगा:

"सो रहे हो, किन्तु याद रखो कि शीघ्र ही हम तुम सब को जगा देंगे, जगा देंगे, जगा देंगे!"

हवा के तेज झोंके के साथ नहीं, बल्कि अन्तिम धीमे निःश्वास के साथ दिन का अन्त हुआ। तब पूर्ण निस्तब्धता छा गयी और मामूली-सी आवाज़ें, यहाँ तक कि 'सूखे नाले' के पास वाली झाड़ियों में बैठे हुए तीतरों की धीमी सीटियाँ भी सुनायी देने लगीं।

यह समझकर कि एक इंसान मुसीबत में है, त्राव्का सिसकती हुई नास्त्या के समीप आयी और उसने उसके आंसुओं से भीगे नमकीन गाल को चाटा। घड़ी भर के लिए नास्त्या ने अपना सिर ऊपर उठाया, त्राव्का की ओर देखा और फिर से अपने सिर को बेरियों से भरी टोकरी के ऊपर टिका दिया। त्राव्का क्रेनबेरियों की तहों के नीचे रोटी की गन्ध अनुभव कर रही थी और बेशक वह बेहद भूखी थी, फिर भी टोकरी में अपने पंजे खोंसने की बात सोच भी नहीं सकती थी। इसके विपरीत, एक इंसान को मुसीबत में देखकर उसने अपना सिर ऊपर उठाकर चिल्लाना

शुरू किया।

मुझे याद आ रहा है कि बहुत बरस पहले एक बार, जैसा कि पुराने वक्तों में होता था, हम तीन घोड़ोंवाली, 'त्रोइका' गाड़ी में जंगली मार्ग से जा रहे थे। त्रोइका की घण्टियाँ बज रही थीं। उस दिन भी आज की भाँति सन्ध्या हो रही थी। कोचवान ने अचानक ही घोड़ों को रोककर कुछ देर तक ध्यान से सुनने के बाद कहा था:

"कहीं कोई मुसीबत अवश्य आई है!"

हमें भी कुछ सुनायी दे रहा था।

"क्या बात है?"

"कहीं कोई मुसीबत आई है, जंगल में कुत्ता रो रहा है।"

उस शाम को हम यह मालूम न कर पाये थे कि वहाँ क्या घटना घटी थी। शायद तब भी दलदल किसी इंसान को निगल रही थी और इंसान का वफादार साथी कुत्ता उसे विदा करता हुआ रो रहा था।

सन्ध्या की नीरवता में जब त्राव्का हूँकी, तो भूरा भेड़िया फौरन समझ गया कि आवाज़ पैलेस्तीन की ओर से आ रही है और वह सीधे उधर ही चल दिया।

किन्तु त्राव्का ने शीघ्र ही हूँकना बन्द कर दिया। भूरा भेड़िया रुककर फिर से कुत्ते के हूँकने की प्रतीक्षा करने लगा।

तभी त्राव्का ने 'समतल पत्थर' की ओर से रुक-रुककर आने

वाली किसी जानवर की सुपरिचित और धीमी ध्वनि सुनी।

त्राव्का फौरन समझ गयी कि वह ख़रगोश का पीछा करने वाली लोमड़ी की आवाज़ है। अपनी साधारण तर्क-बुद्धि से वह यह भाँप गयी थी कि लोमड़ी ने भी उसी ख़रगोश की गन्ध पा ली है जिसे खुद उसने भी 'समतल पत्थर' के समीप अनुभव किया था। त्राव्का यह भी जानती थी कि चालाकी किये बिना लोमड़ी कभी भी ख़रगोश को पकड़ने में सफल न हो सकेगी। वह इसलिए भौंक रही थी कि ख़रगोश भाग-भागकर थक जाये और जब थककर किसी बिल में जा लेटेगा, तो उसे पकड़ लेगी। अन्तीपिच की मृत्यु के बाद त्राव्का ने अपनी खुराक हासिल करने का यही तरीका बना लिया था। जब वह किसी लोमड़ी की भूँक सुनती, तो जिधर से लोमड़ी की आवाज़ आती होती, भेड़ियें की भाँति वह उसी दिशा में पहुँच जाती। और जिस प्रकार भेड़िया ख़रगोश के पीछे भोंकने वाले कुत्ते का इन्तजार करता हुआ छिपकर खड़ा रहता है, उसी भाँति वह भी किसी झाड़ी में छिपकर खड़ी रहती और लोमड़ी जिस ख़रगोश का पीछा कर रही होती, उसके नजदीक आने पर उसे पकड़ लेती।

लोमड़ी की भूँक सुनते हुए त्राव्का हम शिकारियों की भाँति यह समझ जाती थी कि भागता हुआ ख़रगोश कौन-सा मार्ग अपनायेगा। वह 'समतल पत्थर' से 'अन्धी दलदल' की ओर भागेगा, वहाँ से 'सूखे नाले' की तरफ़, फिर वहाँ से एक लम्बा चक्कर काटकर पैलेस्तीन में पहुँचेगा और वहाँ से पुनः 'समतल पत्थर' की तरफ़ लौट आयेगा। इसलिए त्राव्का सीधी 'समतल

पत्थर' की ओर चली गयी और जूनिपर की घनी झाड़ी के पीछे छिपकर बैठ गयी।

उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसके तेज कानों ने शीघ्र ही दलदली डबरों से आती हुई ख़रगोश के पंजों की चाप सुनी। इंसानी कानों के लिए इस आवाज़ को सुन पाना असम्भव था। पानी से भरे ये वही डबरे थे जो नास्त्या के पद-चिह्नों से उसी सुबह को बने थे। कुछ ही क्षण में ख़रगोश 'समतल पत्थर' के समीप पहुँचने वाला था।

त्राव्का झाड़ी के पीछे दुबकी बैठी थी। उसने झपटने के लिए अपनी पिछली टाँगों को तैयार किया हुआ था और जैसे ही उसे ख़रगोश के दो कान दिखायी दिये, वह उस पर झपटी।

किन्तु यह बड़े आकार का बूढ़ा ख़रगोश, जो लँगड़ाता हुआ कठिनाई से भाग रहा था, न जाने क्या सोचकर इसी वक्त अपनी पिछली टाँगों पर बैठ गया और यह अनुमान लगाने लगा कि भोंकने वाली लोमड़ी और उसके बीच कितना फासला है।

त्राव्का का झपटना और ख़रगोश का सहसा रुक जाना, दोनों क्रियाएँ एक साथ ही हुईं।

इस प्रकार त्राव्का ख़रगोश से आगे निकल गयी।

जब तक त्राव्का ठीक दिशा में लौटी, तब तक ख़रगोश छलाँगें मारता हुआ मीत्यावाले मार्ग पर 'अन्धी दलदल' की ओर दूर तक बढ़ चुका था।

इस प्रकार त्राव्का का भेड़िये की तरह शिकार करने का तरीका सफल न हो पाया। अब रात होने तक ख़रगोश के लौटने की सम्भावना नहीं थी। कुत्ते के शिकार के तरीके को अपनाते हुए त्राव्का ख़रगोश के पीछे दौड़ी और जोर की एक चीख मारकर उसने सन्ध्या के शान्त वातावरण को अपनी भूँक से गुँजा दिया।

कुत्ते की आवाज़ सुनकर लोमड़ी ने ख़रगोश का पीछा करने का ख्याल छोड़ दिया और वह खेत की चुहियाँ पकड़ने की अपनी साधारण दिनचर्या में लग गयी... उधर जब भूरे भेड़िये ने आखिर कुत्ते की चिर-प्रतीक्षित भूँक सुनी, तो तेज़ी से 'अन्धी दलदल' की ओर दौड़ चला।

11

ख़रगोश के पाँवों की आहट मिलने पर 'अन्धी दलदल' के मेगापाई दो दलों में बँट गये। एक दल बालक के समीप आकर चिल्लाया:

"द्रित-तित-ती-ई!"

दूसरे दल ने ख़रगोश को सम्बोधित करते हुए कहा:

"द्रत-तत-ता-आ!"

मेगपाइयों के इस शोर को समझना और इसका अर्थ लगाना कठिन था। यह मदद के लिए किसी को बुलाने का निमंत्रण तो नहीं हो सकता था। कारण कि यदि उनका शोर सुनकर कोई मनुष्य अथवा कुत्ता यहाँ आ जाता, तो वे खुद ही घाटे में रहते।

शायद वे अपने शोर से सभी मेगपाइयों को रक्त की दावत उड़ाने के लिए बुलाना चाहते थे। कौन जाने..

"द्रित-तित-ती-ई!" उस नन्हे-से इंसान के अधिक समीप जाते हुए वे चिल्लाये।

वे उस छोटे-से आदमी के बिल्कुल नजदीक जाने का साहस नहीं कर पा रह थे, क्यांकि अभी तक उसके हाथ पूरी तरह मुक्त थे। सहसा ही इन मेगपाइयों में एक प्रकार की गड़बड़ मच गयी। और अलग-अलग आवाज़ों की जगह वे सभी कभी "द्रत-तत-ता-आ" और कभी-कभी "द्रित-तित-ती-ई" का शोर मचाने लगे।

यह इस बात का संकेत था कि ख़रगोश ‘अन्धी दलदल’ के पास पहुँच रहा है।

यह ख़रगोश पहले भी कई बार त्राव्का से बच निकला था, वह जानता था कि त्राव्का नजदीक आती जा रही है और इसलिए कोई चाल चलनी चाहिए। उसने ऐसा ही किया। मीत्या से थोड़ी दूरी पर यह दलदल के किनारे ही रुक गया और इस प्रकार उसने मेगपाइयों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वे सभी फर वृक्षों की फुनगियों पर जा बैठे और ख़रगोश को देखकर शोर मचाने लगे:

"द्रत-तत-ता-आ-आ!"

न जाने क्यों, मगर ख़रगोश मेगपाइयों के इस शोर को कोई

महत्व नहीं देते और उनकी ओर ध्यान न देकर अपनी क्रीड़ा में लगे रहते हैं। इसीलिए कई बार यह ख्याल आता है कि मेगपाइयों के इस शोर का कोई अर्थ नहीं होता और ये भी इंसानों की भाँति अपनी ऊब मिटाने और समय गुजारने के लिए व्यर्थ बकवास करते रहते हैं।

थोड़ी देर के लिए अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर ख़रगोश ने एक दिशा में अपनी पहली लम्बी छलाँग लगायी, कुछ देर रुककर दूसरी तरफ़ बड़ी छलाँग लगायी और फिर कुछ छोटी-छोटी छलाँगें लगाने के बाद तीसरी दिशा में लम्बी छलाँग लगायी और अपने पद-चिह्नों पर नज़र टिकाकर लेट गया, ताकि यदि त्राव्का उसकी इन चालों को समझकर उसे खोज ही निकाले, तो वह उसे पहले से ही देख सके..

अरे हाँ! ख़रगोश चालाक है, बहुत चालाक। किन्तु उसकी ये चालाकियाँ खतरनाक भी सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि एक चतुर शिकारी कुत्ता भी यह जानता है कि ख़रगोश हमेशा अपने पदचिह्नों पर नज़र टिकाये रहता है और अपने शिकार को पदचिह्नों के आधार पर नहीं, बल्कि विश्वसनीय गन्ध की मदद से पकड़ने की कोशिश करता है।

कुत्ते की भूँक बन्द हो जाने पर यह जानकर कि उसने उसे खोजने के लिए अपना भयानक चक्कर लगाना शुरू कर दिया है, इस मासूम जानवर का दिल बैठने लगा...

इस बार किस्मत ने ख़रगोश का साथ दिया। उसने अनुभव किया

कि दलदल में चक्कर काटती हुई कुतिया का ध्यान अवश्य ही किसी अन्य वस्तु की ओर चला गया है। अचानक उसे किसी इंसान की आवाज़ साफ़ तौर पर सुनायी दी और इसके बाद बड़ी हड़बड़ी-सी मची..

यह सोचा जा सकता है कि ख़रगोश ने यह सब शोर सुनकर अपने आपसे कुछ इस प्रकार कहा होगाः "अब भाग निकलना चाहिए!" और वह चुपचाप 'समतल पत्थर' की ओर लौट गया।

ख़रगोश का पीछा करती हुई त्राव्का जब तेजी से दलदल को लाँघ रही थी, तो कोई दस कदम आगे जाने पर एक छोटा-सा आदमी उसे अपने सामने दिखायी दिया। वह ख़रगोश के सम्बन्ध में सभी कुछ भूल-भालकर बुत बनी खड़ी रह गयी।

दलदल में फँसे उस छोटे-से आदमी को देखकर कुतिया ने अपने मन में क्या सोचा होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। यह तो हम ही एक दूसरे के लिए भिन्न हैं। किन्तु त्राव्का के लिए तो सिर्फ दो ही तरह के इंसान थे - एक तो विभिन्न चेहरों वाले अन्तीपिच और दूसरे अन्तीपिच के शत्रु। इसीलिए एक अच्छा और समझदार कुत्ता किसी इंसान को देखते ही उसकी ओर नहीं बढ़ता, बल्कि यह सोचता है कि वह इंसान उसका स्वामी है या स्वामी का शत्रु।

इसलिए त्राव्का डूबते सूर्य की अन्तिम किरणों की चमक में उस बालक के मुँह पर दृष्टि जमाये खड़ी थी।

शुरु में तो बालक की आँखें बुझी-बुझी और निर्जीव थीं, किन्तु

सहसा उनमें ज्योति चमक उठी और त्राव्का ने उसे तत्क्षण ही देख लिया।

"सम्भवतः यह अन्तीपिच ही है," त्राव्का ने सोचा।

और उसने धीरे से अपनी दुम हिलायी।

जाहिर है कि हमारे लिए यह बताना सम्भव नहीं कि त्राव्का किस आधार पर यह निर्णय करती थी कि कौन अन्तीपिच है तथा कौन नहीं। किन्तु हम कुछ अनुमान अवश्य लगा सकते हैं। क्या आपको याद है, क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है कि जंगल के बीच ठहरे पानी के एक ताल में अचानक ही आपने किसी एक बहुत सुन्दर और आकर्षक आदमी की परछाईं देखी हो, ऐसे आदमी की जैसा कि त्राव्का के लिए अन्तीपिच था? वह आपके पीछे खड़ा हुआ ताल में वैसे ही झाँक रहा हो, जैसे कोई दर्पण में झाँकता है। प्रकृति के उस दर्पध में आपको बादलों, वृक्षों ओर डूबते सूरज के सोने-ताँबे, एक कोने में मुस्कुराते हुए दूज के चाँद की प्यारी आभा और तारों के झुरमुटों से घिरी हुई यह परछाईं बहुत प्यारी लगती है..

सम्भवतः त्राव्का को सभी मनुष्यों में अन्तीपिच की परछाईं इसी भाँति दिखायी देती थी। शायद वह हर इंसान की बाँहों में दौड़ती हुई चली जाती, यदि अनुभव ने उसे यह न सिखाया होता कि अन्तीपिच की सूरत वाला इंसान अन्तीपिच का शत्रु भी हो सकता था।

इसलिए वह प्रतीक्षा कर रही थी।

किन्तु धीरे-धीरे उसके पंजे भी दलदल में धँसने लगे। देर तक एक ही जगह पर खड़े रहने से कुत्ते के पंजे भी दलदल में धँस सकते हैं और वह उन्हें बाहर निकालने में असमर्थ हो जाता है। और अधिक प्रतीक्षा करना सम्भव नहीं था। अचानक..

न बादल गरजा, न बिजली कड़की, न विजय-ध्वनियों के साथ सूर्योदय हुआ, न सारसों के नये सुन्दर दिवस के आश्वासन के साथ सूर्यास्त हुआ। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सम्भवतः प्रकृति की कोई भी दूसरी घटना त्राव्का के साथ इस दलदल में घटनेवाली घटना से अधिक अद्भुत नहीं हो सकती थी उसने इंसानी भाषा में एक शब्द सुना और क्या कमाल का था वह शब्द भी!

अन्तीपिच सच्चे अर्थों में एक महान शिकारी थे। उन्होंने अपनी शिकारी कुतिया को एक शिकारी के अनुरुप ही नाम भी दिया था। इसका नाम रूसी भाषा की "जत्रावीत" धातु (शिकार का पीछा करना) से निकाला गया था। शुरु-शुरु में हमारी त्राव्का जत्राव्का नाम से पुकारी जाती थी, किन्तु बाद में शिकार से सम्बन्धित यह नाम संक्षिप्त होकर सुन्दर त्राव्का बन गया। अन्तीपिच जब अन्तिम बार हमारे गाँव में आये थे, उस समय भी उनकी इस शिकारी कुतिया का नाम जत्राव्का ही था। और मीत्या की आँखों में जब चमक दिखायी दी, तो इसका यही अर्थ था कि उसे सहसा कुतिया का नाम याद आ गया था। तब उस बालक के मुरझाये, नीले होंठों पर सुर्खी दौड़ने लगी और वे लाल होकर फड़फड़ाने लगे। त्राव्का ने इस छोटे से आदमी के

होंठों को इस तरह हिलते देखा और इसीलिए उसने दूसरी बार अपनी दुम हिलायी। और तब वह हुआ, जो त्राव्का के लिए चमत्कार के समान था। पुराने दिनों के बूढ़े अन्तीपिच की भाँति छोटे और नये, बालक अन्तीपिच ने उसे पुकारा:

"जत्राव्का!"

उसे अन्तीपिच के रूप में पहचानकर त्राव्का तत्काल ही भूमि पर लेट गयी।

"सुनो तो!" अन्तीपिच ने कहा, "मेरे पास आओ, तुम तो बड़ी समझदार हो न!"

और त्राव्का धीरे-धीरे उसकी तरफ़ रेंगने लगी।

किन्तु यह छोटा-सा आदमी केवल मित्रता की भावना से प्रेरित होकर उसे अपने पास नहीं बुला रहा था, जैसाकि त्राव्का ने शायद अपने मन में समझा होगा। उसके शब्दों में केवल खुशी और मित्रता ही नहीं थी, जैसा कि त्राव्का समझ रही थी, बल्कि अपनी रक्षा की चालाकी से भरी हुई एक योजना भी छिपी थी। काश! वह किसी ऐसे ढंग से उसे अपनी योजना बता सकता, जो उसकी समझ में आ जाती, तो वह कितनी खुशी से उसकी जान बचाने के लिए उसकी तरफ़ लपकती! किन्तु मीत्या किसी प्रकार भी ऐसा नहीं कर सकता था और इसलिए मधुर शब्दों द्वारा उसे धोखा देने के लिए विवश था। यह भी ज़रूरी था कि त्राव्का उससे डरती रहे, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ, यदि वह महान और शक्तिशाली अन्तीपिच का कुछ मधुर-सा डर महसूस नहीं करेगी

और प्यार में आकर उसके कन्धों पर जा चढ़ेगी, तो दलदल निश्चय ही इन दोनों को निगल जायेगी। त्राव्का ने जैसी कल्पना की थी, यह छोटा-सा आदमी इस वक़्त इतना महान नहीं हो सकता था। उसके लिए चालाकी से काम लेना ज़रूरी था।

"जत्राव्का, प्यारी जत्राव्का!" वह उसे प्यार से बुलाता रहा।

मगर खुद मन में यही चाहता रहा:

"रेंगती रहो, बस, ऐसे रेंगती ही चली आओ!"

और त्राव्का अपने निश्छल मन में इस नये अन्तीपिच के स्पष्ट शब्दों की प्रति छल-कपट का हल्का-सा सन्देह लिये जब-तब रुकती हुई उसकी ओर रेंगती चली गयी। "मेरी प्यारी, कुछ और आगे आ जाओ, कुछ और!" मीत्या ने कहा।

किन्तु इसी वक्त वह मन ही मन यह भी कह रहा था: "केवल रेंगती चली आओ, रेंगती हुई ही।"

धीरे-धीरे रेंगती त्राव्का उसके पास पहुँच गयी। अब मीत्या दलदल पर रखी हुई अपनी बन्दूक का सहारा लेकर थोड़ा आगे को झुक सकता था तथा हाथ से त्राव्का का सिर थपथपा सकता था। किन्तु यह चालाक छोटा आदमी जानता था कि जैसे ही वह उसे जरा भी थपथपायेगा, वैसे ही कुतिया खुशी से चीखती हुई उसकी ओर लपकेगी तथा उसे डुबो देगी।

इसलिए छोटे आदमी ने अपने मन को मजबूत कर लिया। एक ऐसे योद्धा की भाँति, जो जीवन-मरण की बाजी का अन्तिम दाँव

चलने की प्रतीक्षा में हो, मीत्या भी अपनी साँस रोककर ऐसे ही सही पल का अनुमान लगा रहा था।

एक पल और गुजर जाता, तो त्राव्का उसके कन्धों पर जा चढ़ती। किन्तु छोटे आदमी ने अपना अनुमान लगानेमें गलती नहीं की। उसने अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाकर उस मजबूत कुतिया को उसकी पिछली बाईं टाँग से पकड़ लिया।

ऐसा धोखा तो शायद दुश्मन ही दे सकता था!

त्राव्का ने पूरा जोर लगाकर मुक्त होने का यत्न किया और वह इस छोटे आदमी के हाथ से निकल भी गयी होती, यदि दलदल से आधे बाहर निकले हुए इस आदमी ने उसकी दूसरी पिछली टाँग को भी न पकड़ लिया होता। आन की आन में वह पेट के बल अपनी बन्दूक पर लेट गया और त्राव्का को छोड़कर खुद कुत्ते की भाँति हाथों-पैरों के बल रेंगने लगा। ऐसा करते हुए वह अपनी बन्दूक को भी आगे सरकाता जाता था। इस तरह से रेंगता हुआ वह उस पगडण्डी तक पहुँच गया, जहाँ इंसान निरन्तर आते-जाते थे ओर जहाँ उनके पद-चिह्नों के दोनों ओर लम्बी-लम्बी सफ़ेद घास उगी हुई थी। वहाँ पहुँचते ही वह उठकर खड़ा हो गया, उसने चेहरे से आँसुओं की अन्तिम बूँदें पोंछीं, चिथड़ों पर से मिट्टी झाड़ी और एक वयस्क की भाँति अन्धकारपूर्ण स्वर में बोला : "अब इधर आओ, मेरी प्यारी जत्राव्का!"

इन शब्दों ने और जिस अन्दाज़ में वे कहे गये थे, त्राव्का की

हिचकिचाहट का अन्त कर दिया - अब उसके सामने उसका पहले वाला प्यारा अन्तीपिच खड़ा था। खुशी से चीखती और अपने स्वामी को पहचानती हुई वह उसकी ओर दौड़ी और मीत्या ने अपने मित्र की नाक, उसके कानों तथा आँखों को चूमा।

तो क्या स्वर्गीय वन-रक्षक अन्तीपिच के रहस्यपूर्ण शब्दों के सम्बन्ध में हम जो सोचते हैं, अब हमें अपने पाठकों से उन्हें कह नहीं देना चाहिए? क्या हमें वह "सत्य" भी नहीं बता देना चाहिए जिसे उन्होंने हमारे ठीक समय पर न पहुँच पाने की स्थिति में त्राव्का के कान में कह देने का वचन दिया था? हमारे विचार में अन्तीपिच ने सिर्फ मजाक नहीं किया था। बहुत सम्भव है कि जिस रूप में त्राव्का अन्तीपिच को समझती थी अथवा हमारे मुताबिक इस इंसान ने समस्त मानव जाति और उसके पुरातन इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हुए एक महान इंसानी सत्य को अपने श्वान-मित्र के कानों में फुसफुसा दिया हो। हमारे ख्याल में यह सत्य है - प्यार के लिए मनुष्य का स्थायी और कठोर संघर्ष।

12

इस महत्वपूर्ण दिन में 'ब्लूदोवो दलदल' में जो घटनायें घटीं, उनके सम्बन्ध में अब हमें थोड़ा-सा ही कुछ और कहना है। यह दिन काफ़ी बड़ा रहा था, फिर भी त्राव्का की सहायता से मीत्या के दलदल से निकल आने पर भी इसका अन्त नहीं हुआ। अन्तीपिच से पुनर्मिलन की प्रथम प्रसन्नता के बाद त्राव्का को फिर से ख़रगोश के अधूरे छोड़े गये अपने शिकार की याद

आयी। त्राव्का शिकारी कुतिया थी और इसलिए शिकार करना उसका मुख्य काम था, किन्तु अपने अन्तीपिच के लिए ख़रगोश को पकड़ना उसका सबसे बड़ा सुख था। मीत्या को अन्तीपिच के रूप में पहचानकर उसने फिर चक्कर लगाना शुरु कर दिया। शीघ्र ही ख़रगोश के पद-चिह्न ढूँढ़कर वह जोर से भौंकती हुई ताजा पद-चिह्नों की तरफ़ चल दी।

मीत्या ने, जो भूख से अधमरा-सा हो रहा था, यह समझ लिया कि ख़रगोश हाथ लगने पर ही उसका काम चल सकता है। यदि वह उसका शिकार कर ले, तो बन्दूक की गोली से कुछ सूखी शाखाओं को जलाकर, जैसा कि उसने कई बार अपने पिता को करते देखा था, वह गर्म राख में ख़रगोश को भून लेगा। बन्दूक का निरीक्षण करके तथा गीले कारतूसों को बदलकर वह आगे बढ़ा और जूनिपर की एक झाड़ी के पीछे छिपकर खड़ा हो गया।

उस समय तक बन्दूक का निशाना साधने के लिए काफ़ी रोशनी थी, जब त्राव्का ने 'समतल पत्थर' से नास्त्यावाली पगडण्डी पर ख़रगोश का पीछा करते और पैलेस्तीन को लाँघते हुए उसे उस तरफ़ को मोड़ दिया, जिधर जूनिपर की झाड़ी के पीछे मीत्या छिपा हुआ था। किन्तु इसी समय ऐसा हुआ कि भूरे भेड़िये ने फिर से कुत्ते की भूँक सुनकर उसी झाड़ी को, जहाँ मीत्या छिपा हुआ था, अपने छिपने के स्थान के रूप में चुन लिया और अब दो शिकारी, मनुष्य और उसका बड़ा शत्रु भेड़िया, दोनों आमने-सामने थे... मीत्या ने जैसे ही उस भूरी थूथनी को अपने से केवल पाँच कदम की दूरी पर देखा, वैसे ही वह ख़रगोश को भूल गया

और उसने बन्दूक तानकर भेड़िये पर गोली चला दी।

'भूरे सामन्त' भेड़िये ने जरा भी झटपटाये बिना फौरन दम तोड़ दिया।

गोली चलने से त्राव्का के काम में कुछ विघ्न तो पड़ा, पर वह ख़रगोश का पीछा करती रही। किन्तु इस घटना के सबसे महत्वपूर्ण और सुखद पक्ष का सम्बन्ध न तो ख़रगोश और न भेड़िये से, बल्कि नास्त्या से था। बहुत समीप से ही गोली चलने की आवाज़ सुनकर उसने मीत्या को पुकारा और मीत्या ने उसकी आवाज़ पहचानकर तुरन्त उत्तर दिया। क्षण भर बाद वह उसके पास आ गयी। इसके थोड़ी देर बाद ही त्राव्का ख़रगोश को लिये अपने नये तथा किशोर अन्तीपिच के पास आ पहुँची। तीनों मित्रों ने अलाव के पास बैठकर अपने को गर्माया और वे भोजन तथा आराम करने की तैयारी करने लगे।

हमारे घर से एक घर छोड़कर नास्त्या तथा मीत्या का घर था। अगली सुबह जब उनकी गाय भूख से रँभाने लगी, तो हम ही सबसे पहले यह देखने के लिए वहाँ पहुँचे कि बालक ठीक-ठाक तो है? हम फौरन समझ गये कि उन्होंने रात घर पर नहीं बितायी और यह कि वे दलदल में कहीं रास्ता भूल गये हैं। धीरे-धीरे अन्य सभी पड़ोसी भी इकट्ठे हो गये और हम सब मिलकर यह विचार करने लगे कि अगर वे अभी तक जिन्दा हैं, तो उन्हें कैसे बचाया जा सकता है। हम पूरी दलदल में उन्हें ढूँढ़ने की सोच ही रहे थे कि क्रेनबेरियों के ये दीवाने आगे-पीछे आते

दिखायी दिये। डण्डे के सहारे एक भारी टोकरी उनके कन्धों पर टिकी हुई थी और अन्तीपिच की कुतिया त्राव्का उनके पीछे-पीछे आ रही थी।

उन्होंने हमें अपने साहसपूर्ण कार्य का विस्तारपूर्वक विवरण सुनाया। हमने उनके हर शब्द पर पूरी तरह विश्वास कर लिया, क्योंकि क्रेनबेरियों से भरी हुई बहुत बड़ी टोकरी हमारे सामने थी। किन्तु इस बात पर सभी ने विश्वास नहीं किया कि इस लड़के ने, जो अभी ग्यारह साल का भी नहीं हुआ था, एक धूर्त और अनुभवी भेड़ियें को मार डाला है। हाँ, जिन्होंने विश्वास किया, उनमें से कुछ लोग बड़ी स्लेज ओर रस्सा लेकर बताये गये स्थान पर चले गये और शीघ्र ही 'भूरे सामन्त' भेड़िये की लाश ले आये। तब तो गाँव का हर आदमी और कुछ अन्य गाँवों के लोग भी अपना कामकाज छोड़कर यहाँ पहुँचे। ख़ूब बातें कीं लोगों ने! यह कहना मुश्किल है कि किसे अधिक देर तक उन्होंने घूरा - भेड़िये को या दोहरे छज्जेवाली टोपी पहने शिकारी को। कभी भेड़िये और कभी लड़के को देखते हुए लोग कहते थे :

"जरा ख्याल करो, हम इस पर हँसा करते थे, इसे 'नन्हा किसान' कहते थे!"

इसके बाद 'नन्हा किसान' धीरे-धीरे तथा लोगों का ध्यान आकर्षित किये बिना ही बदलने लगा और युद्ध के आगामी दो वर्षों में एक लम्बा-तड़ंगा और सुडौल युवक बन गया। यदि युद्ध समाप्त न हो जाता, तो निश्चय ही वह महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध

में अपनी वीरता से नाम पैदा करता।

और 'सुनहरी मुर्गी' जैसी नास्त्या ने भी हमें चकित कर दिया। हममें से किसी ने भी क्रेनबेरियों के लालच के लिए उसकी आलोचना नहीं की। इसके विपरीत सभी ने इस बात के लिए उसकी प्रशंसा की कि उसने अपने भाई को चालू पगडण्डी पर ले जाने का यत्न किया था और वह इतनी अधिक क्रेनबेरियाँ इकट्ठी कर लायी थी। किन्तु जब लेनिनग्राद से निकालकर लाये गये बीमार बच्चों की सहायता की प्रार्थना लेकर कुछ लोग गाँव में आये, तो नास्त्या ने अपनी सारी पौष्टिक क्रेनबेरियाँ उन्हें सौंप दीं। और तब उसके विश्वासपात्र बन जाने पर हमें यह मालूम हुआ कि लालच करने के लिए उसने मन ही मन अपनी कितनी अधिक भर्त्सना की थी।

अब हमें केवल अपने सम्बन्ध में ही कुछ शब्द कहते हैं। हम कौन हैं और किसलिए 'ब्लूदोवो दलदल' में आये। हम खोजी हैं और दलदल में निहित धन की खोज कर रहे हैं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के आरम्भ होते ही दलदल से पीट प्राप्त करने के लिए हमने अपना काम शुरू कर दिया था। हमने मालूम किया कि एक बड़े कारखाने को सौ वर्ष से अधिक समय तक चलाने के लिए यहाँ से ईंधन प्राप्त किया जा सकता है। इतना धन हमारी इन दलदलों में छिपा पड़ा है! अब भी बहुत-से ऐसे लोग हैं जो सूरज के महान खजानों के सम्बन्ध में केवल इतना ही जानते हैं कि इनमें शैतान बसते हैं। यह सब बकवास है। इन दलदलों में कहीं भी शैतान नहीं हैं।

1945

(अनुवाद : मदनलाल ‘मधु’)